लेखक की अन्य कृतियाँ

१ १०	जैन कहानियाँ	१ ५०
११ २५	जैन कहानियाँ	२ ५०
२६	जनपद विहार	३ ००
२७	अंक-स्मृति के प्रकार	१ ००
२८	ऐकाह्निक पद्यशती	० ४०
२९	सत्यम् शिवम्	१ ००
३०	जम्बू स्वामी री सूर	० ४०
३१	आत्म-गीत	० ५०

सम्पादित

१	श्री कालू यशो विलास	
२	श्री कालू उपदेश वाटिका	१२ ५०
३	भरत मुक्ति	८ ००
४	अग्नि-परीक्षा	६ ५०
५	आषाढ़भूति	२ ५०
६	श्रद्धेय के प्रति	२ २५
७	नैतिक सजीवन	२ ००
८	आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन	२५ ००
९	आचार्य श्री तुलसी जीवन दर्शन	३ ५०
१०	अहिंसा पर्यवेक्षण	३ ००
११	अहिंसा विवेक	६ ५०
१२	अणु से पूर्ण की ओर	० ७५
१३	अणुव्रत की ओर-१	२ ००
१४	अणुव्रत की ओर-२,	२ ००
१५	आचार्य श्री तुलसी	२ ००
१६	अन्तर्ध्वनि	० ७५
१७	नया युग नया दर्शन	१ ५०
२८	विश्व प्रहेलिका	१५ ००

आत्माराम एण्ड संस दिल्ली-६

सचित्र

जैन कहानियां

(भाग-१३)

लेखक

मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम'

भूमिका

अणुव्रत परामर्शक मुनि श्री नगराजजी डी० लिट्०

सम्पादक

श्री सोहनलाल बाफणा



१९७१

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

SACHITRA JAIN KAHANIYAN
PART 13

by

Muni Shri Mahendra Kumarji Pratham'

Rs 2 50

First Edition 1971

प्रकाशक
रामलाल पुरी सचालक
आत्माराम एण्ड सस
काश्मीरी गेट दिल्ली ६

शाखाएँ
होज खास नई दिल्ली
चौड़ा रास्ता जयपुर
विश्वविद्यालय क्षेत्र चण्डीगढ़
अशोक मार्ग लखनऊ
काश्मीरी गेट दिल्ली ६
चित्रकार श्री व्यास जयपुर

मूल्य दो रुपये पचास पैसे

प्रथम सस्करण १९७१

मुद्रक
हरिहर प्रेस
दिल्ली ६

भू मि का

मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' द्वारा लिखित जैन कहानियाँ (भाग १ से १०) सन् १९६१ मे प्रकाशित हुई। भाग ११ से २५ अब सन् १९७१ मे प्रकाशित हो रहे है। समग्र जैन-कथा-साहित्य को शताधिक भागो मे प्रस्तुत कर देने की लेखक की परियोजना है।

प्रथम १० भागो का प्रकाशन समग्र योजना के अकन का एक मानदण्ड बन गया। आत्माराम एण्ड सस जैसे विश्रुत प्रकाशन सस्थान से एक साथ १० भागो के प्रकाशित होते ही जैन जगत् और साहित्य-जगत् मे नवीन स्फुरणा-सी आ गई। हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकारो ने माना—वैदिक कहानियाँ, पौराणिक कहानियाँ, बौद्ध कहानियाँ शृखलाबद्ध होकर साहित्यिक क्षेत्र मे कब ही आ चुकी है। जैन कहानियो का इस रूप मे अवतरण यह प्रथम बार हो रहा है, अत स्तुत्य है और एक दीर्घकालीन रिक्तता का पूरक है।

श्री जैनेन्द्रकुमार जी ने कहा – बहुत पहले जैन समाज के अग्रणी लोगो ने मुझे कहा—जैन कथाओ को भी आप अपनी शैली और अपनी भाषा दे। मैने कहा—जैन कथा-साहित्य मुझे मिले भी ? प्रस्तावक व्यक्तियो ने बडे-बडे ग्रन्थ मेरे सामने लाकर रख दिए। वे सब देखकर मैंने कहा—ये विभिन्न भाषा और वभिन्न विषयो मे आवद्ध ग्रन्थ मेरी अपेक्षा के पूरक कैसे हो

सकेंगे। इन ग्रन्थों म तो प्रकीण कथा-साहित्य है। मैं क तक कथा-सग्रह और वला-न्वदन कर सकूँगा तथा कव तक फिर उस कथा-सग्रह को अपनी भाषा और अपनी शैली दे सकूँगा। मुझे तो सगृहीत व सुनियोजित कथा-साहित्य दें। मेरी इस मांग का समाधान उनके पास नही था, अत वह बात नही रह गई। जन कहानिया के प्रस्तुत १० भाग ज्या ही मेरे सामने आए अविलम्ब मैं पढ गया। जन कथा-साहित्य के प्रति मेरे मन में गुरुत्व का मनाभाव भी बना। अब इन्हें मैं या कोई भी साहित्यकार आसानी से अपनी भाषा दे सकता है। जन-कथा-साहित्य के विस्तार का अब यह समुचित धरातल बन गया है।

श्री जनन्द्रकुमार जी से जब यह पूछा गया कि सवसाधारण के लिए लिखी गई इन कथा-पुस्तका को आप और अनेकों अन्य मूधन्य साहित्यकार रुचि व उत्साह से पढ गए, यह क्या? उन्होने बताया साहित्यकार को अपने उपन्यास व अपनी कहानिया की कथा-वस्तु भी तो दिमाग म गढनी पडती है। नवीन कथाओ का अध्ययन साहित्यकार के दिमाग को उवर बनाता है। नए बीज देता है। यही कारण है कि साहित्यकार इन सवसाधारण के लिए लिखी जन कहानिया को अविलम्ब पढ गए। साहित्यकार के अपन इस प्रयाजन के साथ-साथ जन कथा साहित्य की व्यापकता तो स्वत फलित होती ही है।

जन कहानियाँ दिगम्बर श्वेताम्बर आदि सभी जन समाजा म मान्य हुई। शास्त्र मत्र जन समाजा [के एक] भल ही न हो पुरातन कथा-साहित्य का उपलब्ध हो जाना सभी क लिए रुची-वधक प्रमाणित हुआ। बच्चा म, वद्धा म युवका म व महिलाओ म जन कहानियाँ पढ़न की अद्भुत उत्सुकता देखी गई। जो महिलाएँ एक एक शब्द जोड़-जोडकर पढ़ती थीं व दस भाग पढ़न तक हिन्दी धारा प्रवाह पढ़न लगीं। धार्मिक प्रशिक्षण एव

धार्मिक परीक्षाओ मे इनका उपयोग हुआ। विद्यालयो के पुस्तकालयो मे ये व्यापक स्तर पर पहुँची। जैन जैनेतर विद्यार्थी स्पर्धापूर्वक इन्हे प्राप्त करते और अपूर्व उत्साह से इन्हे पढते। अग्रिम भागो की स्थान-स्थान से माँग आने लगी।

सर्वसाधारण प्रशस्ति के साथ विचार-जगत् से अनेक सुझाव भी आने लगे। कुछ एक लोगो ने कहा—पुस्तक-माला का नामकरण जैन कहानियाँ न होकर धार्मिक कहानियाँ या बोध कहानियाँ ऐसा कोई नाम होता, तो इसकी व्यापकता सार्वदेशिक हो जाती। कुछेक विचारको ने सुझाया कहानियाँ वर्गीकृत होनी चाहिए थी। प्रत्येक कहानी का ग्रन्थ-सदर्भ उसके साथ होना चाहिए था।

नामकरण के परिवर्तन का सुझाव अधिक उपयोगी नही लगा। सार्वजनिक या सार्वदेशिक नाम होने से ही कोई पुस्तक या कोई प्रवृत्ति सर्वमान्य व व्यापक बन जाती है, यह निरा भ्रम है। दूसरी बात, परम्परागत आधारो पर कथा-साहित्य की अनेक धाराएँ साहित्य जगत् मे पहले से ही प्रसारित हो चली है। इस स्थिति मे एक परम्परा विशेष के कथा-साहित्य को सार्वजनिकता मे विलीन कर देना उस परम्परा के साथ न्यायोचित नही होता। ऐसा शक्य भी नही था। नामकरण के बदल देने से कथा-वस्तु तो बदलती नही। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि किसी भी कथा-वस्तु मे अपनी सस्कृति, सभ्यता और परम्परा के मूल्य प्रतिबिम्बित होते है। वह आधार मिटा दिया जाए, तो कथा वस्तु ही निराधार व निरर्थक बन जाती है। अस्तु, इन्ही तथ्यो को ध्यान मे रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक-माला का नाम 'जैन कहानियाँ' ही अधिक सगत माना गया है।

वर्गीकरण और ग्रन्थ-सदर्भ का सुझाव शोध-विद्वानो की ओर से था। सुझाव उपयोगी तो था ही, पर, उसकी भी अपनी सीमा थी। प्रस्तुत पुस्तक-माला मुख्यत लोक-साहित्य के रूप मे प्रका-

सकेंगे। इन ग्रन्थों मे तो प्रकीर्ण कथा-साहित्य है। मैं क तक कथा-सग्रह और कला-चयन कर सकूँगा तथा कब तक फिर उस कथा-सग्रह को अपनी भाषा और अपनी शैली दे सकूगा। मुझे तो सगृहीत व सुनियोजित कथा-साहित्य दे। मेरी इस माँग का समाधान उनके पास नही था, अत वह बात नही रह गई। जन कहानियो के प्रस्तुत १० भाग ज्यो ही मेरे सामने आए अविलम्ब मैं पढ गया। जैन कथा-साहित्य के प्रति मेरे मन में गुरुत्व का मनोभाव भी बना। अब इन्हे मैं या कोई भी साहित्यकार आसानी से अपनी भाषा दे सकता है। जन कथा-साहित्य के विस्तार का अब यह समुचित धरातल बन गया है।

श्री जनेन्द्रकुमार जी से जब यह पूछा गया कि सवसाधारण के लिए लिखी गई इन कथा-पुस्तको को आप और अनेकों अन्य मूधन्य साहित्यकार रुचि व उत्साह से पढ गए यह क्यो ? उन्होने बताया साहित्यकार को अपने उपन्यास व अपनी कहानियों का कथा-वस्तु भी तो दिमाग से गढनी पडती है। नवीन कथाओ का अध्ययन साहित्यकार के दिमाग को उवर बनाता है। नए बीज देता है। यही कारण है कि साहित्यकार इन सवसाधारण के लिए लिखी जन कहानियो को अविलम्ब पढ गए। साहित्यकार के अपने इस प्रयोजन के साथ-साथ जन कथा साहित्य की व्यापकता तो स्वत फलित होती ही है।

जैन कहानियाँ दिगम्बर श्वताम्बर आदि सभी जन समाजा में मान्य हुई। शास्त्र सब जन समाजों [के एक] भले हो न हो, पुरातन कथा साहित्य का उपलब्ध हो जाना सभी के लिए रुची-वधक प्रमाणित हुआ। बच्चा मे, वद्धा, मे युवका मे व महिलाआ मे जन कहानियाँ पढने की अद्भुत उत्सुकता देखी गई। जो महिलाएँ एक एक शब्द जोड-जोडकर पढती थी, वे दश भाग पढने तक हिन्दी धारा प्रवाह पढन लगी। धार्मिक प्रशिक्षण एव

धार्मिक परीक्षाओ मे इनका उपयोग हुआ। विद्यालयो के पुस्तकालयो मे ये व्यापक स्तर पर पहुँची। जैन जैनेतर विद्यार्थी स्पर्धापूर्वक इन्हे प्राप्त करते और अपूर्व उत्साह से इन्हे पढते। अग्रिम भागो की स्थान-स्थान से माँग आने लगी।

सर्वसाधारण प्रशस्ति के साथ विचार-जगत् से अनेक सुझाव भी आने लगे। कुछ एक लोगो ने कहा--पुस्तक-माला का नामकरण जैन कहानियाँ न होकर धार्मिक कहानियाँ या वोध कहानियाँ ऐसा कोई नाम होता, तो इसकी व्यापकता सार्वदेशिक हो जाती। कुछेक विचारको ने सुझाया कहानियाँ वर्गीकृत होनी चाहिए थी। प्रत्येक कहानी का ग्रन्थ-सदर्भ उसके साथ होना चाहिए था।

नामकरण के परिवर्तन का सुझाव अधिक उपयोगी नहीं लगा। सार्वजनिक या सार्वदेशिक नाम होने से ही कोई पुस्तक या कोई प्रवृत्ति सर्वमान्य व व्यापक वन जाती है, यह निरा भ्रम है। दूसरी वात, परम्परागत आधारो पर कथा-साहित्य की अनेक धाराएँ साहित्य जगत् मे पहले से ही प्रसारित हो चली है। इस स्थिति मे एक परम्परा विशेष के कथा-साहित्य को सार्वजनिकता मे विलीन कर देना उस परम्परा के साथ न्यायोचित नही होता। ऐसा शक्य भी नही था। नामकरण के वदल देने से कथा-वस्तु तो वदलती नही। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि किसी भी कथा-वस्तु मे अपनी सस्कृति, सभ्यता और परम्परा के मूल्य प्रतिविम्वित होते है। वह आधार मिटा दिया जाए, तो कथा वस्तु ही निराधार व निरर्थक वन जाती है। अस्तु, इन्ही तथ्यो को ध्यान मे रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक-माला का नाम 'जैन कहानियाँ' ही अधिक सगत माना गया है।

वर्गीकरण और ग्रन्थ-सदर्भ का सुझाव शोध-विद्वानो की ओर से था। सुझाव उपयोगी तो था ही, पर, उसकी भी अपनी सीमा थी। प्रस्तुत पुस्तक-माला मुख्यत लोक-साहित्य के रूप मे प्रका-

शित हो रही है। *अधिक से अधिक लोग इसे पढे व सात्विक* प्रेरणा ग्रहण करें, यह इसका अभिप्रेत है। सवसाधारण को कथा की आत्मा से व उसकी रोचकता से अधिक प्रम होता है, न कि उसके मूल ग्रन्थ और ग्र न्थकार से। किसा कथा को पढते ही शोध विद्वान् की दृष्टि इस पर पहुँचेगी कि इस कथा का मूल आधार क्या है, वह कितना पुराना है। इस कथा वस्तु पर अन्य किस वस्तु का प्रभाव है अन्य परम्पराओ में यह कथा मिलती है, या नही आदि-आदि। शोघ विद्वान् की ये मौलिक जिज्ञासाएँ सवसाधारण के लिए भूलभुलया है। अस्तु, पुस्तक-माला के प्रयोजन को समझते हुए प्रत्येक कथा के साथ गवेषणात्मक टिप्पणे जोडना आवश्यक नही माना गया। फिर भी लेखक ने इन अग्रिम भागों की कथाओ के मौलिक आधार अपने लेखकीय मे बता दिए है। इससे शोध विद्वानो को प्राथमिक दिग्दशन तो मिल ही जाएगा। लेखक की परिकल्पना है, इस पुस्तक माला की सम्पूर्ति के पश्चात् समग्र कथाओं के वर्गीकृत रूप का गवेषणात्मक टिप्पणों के साथ स्वत न्त्र सस्करण पृथक् ग्रन्थ के रूप में तयार कर दिया जाए।

कथा-वस्तु की सरसता वढाने के लिए प्रकाशक ने प्रत्येक कथा मे घटना-सम्वद्ध एक एक चित्र दिया है। चित्रकार ने जन साधु की मुद्रा लेखक की वेपभूपा मे ही चित्रित की। यह स्वाभाविक भी था। पर, स्थिति यह है कि जन साधु की कोई भी एक वेपभूपा जन समाज मे सवसम्मत नही है। दिगम्बर मुनि अचेलक है। श्वेताम्बर मुनि-वस्त्र धारक है पर, उनमे भी दो प्रकार है, मुखपतिवद्ध और अमुखपतिवद्ध। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक मुनि अमुखपतिवद्ध है तथा स्थानाकवासी और तेरापथी मुखपतिवद्ध है स्थानकवासियो और तेरापथियों में भी मुखपति के छोटे-वडेपन व आकार प्रकार का अन्तर है। सहस्राब्दियो पूव के जन साधुओ

का श्वेताम्बर रूप था या दिगम्बर रूप, यह भी अपनी-अपनी मान्यता का विषय है। इस स्थिति में गौतम, स्थूलिभद्र आदि प्राचीन व सर्वमान्य भिक्षुओं की वेषभूषा क्या चित्रित की जाए, यह एक जटिल प्रश्न बन जाता है। हाँ, महावीर व अन्य तीर्थंकरों के स्वरूप में सभी जन समाज एकमत है। उनकी अचेलक अवस्था निर्विवाद है। दशों भाग ज्यों ही प्रकाशित होकर आए और चित्रों में जहाँ-जहाँ जैन मुनियों की उपस्थिति आई, वहाँ-वहाँ उनका स्वरूप मुखपतिबद्ध आया। मुखपति भी तेरापंथी आकार-प्रकार की। लेखक के लिए सब संकोच का विषय बना। उनके मन में तो ऐसा कोई आग्रह था नहीं। स्थितिवश यह सब हुआ। प्रश्न यह है कि जैन साधु का कोई भिन्न स्वरूप भी चित्रकार देता, तो क्या देता? कोई सर्वसम्मत रूप है भी तो नहीं।

लेखक के प्रति अकारण ही कोई संकीर्णता की धारणा बने, यह भी वांछनीय नहीं था, अतः आगामी दश भागों के लिए यही निर्णय लिया गया कि जैन साधु की अनिवार्यता वाला घटना-प्रसंग चित्र-बध्द किया ही न जाए। इस निर्णय से चित्रकार की स्वतंत्रता में बाधा आएगी। यथार्थ व प्रभाव पूर्ण घटना को छोड़कर उसे साधारण घटना-प्रसंगों को चित्रबद्धता देनी होगी। इससे पुस्तक व कथा-वस्तु का आकर्षण भी न्यून होगा पर इसके सिवाय प्रस्तुत समस्या का कोई समाधान भी तो नहीं था। पूर्व प्रकाशित भागों के नए संस्करणों में भी यह संशोधन उपादेय हो सकेगा। चालू संस्करणों को तो स्थिति-प्रज्ञ पाठक निर्भ्रान्ति भाव से पढ़ते रहेंगे, यह आशा है ही।

लेखक की समग्र जैन कथा-साहित्य को इसी शृंखला में लिख देने की परिकल्पना है। उन्होंने अपने लेखन का विषय ही कथा-साहित्य बना लिया है। पश्चिमी लेखकों ने इसी प्रकार एक-

जन कथाओ के आलेखन का क्रम विगत एक दशाब्दि से चला आ रहा है। अनचाहे ही यह लेखन का मुख्य विषय बन गया और क्रमश अनेकानेक कथाए सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श तथा प्रान्तीय भाषाओ से रूपान्तरिक होकर एक श्रृ खला मे सम्बद्ध होने लगी। कथाओं का पठन तथा श्रवण सर्वाधिक प्रिय था ही, पर, लेखन भी इनके साथ अनुस्यूत हो जायेगा, यह कल्पना नही थी। किन्तु, अनायास हो गया और उससे मानसिक प्रसत्ति का एक सु दर स्रोत फूट पडा। इस बीच प्राचीन आचार्यो के अनेका नक कथा-सग्रह के ग्रन्थ देखे और उनसे कथाओ का चयन आरभ किया। सक्षिप्त व विस्तृत दोनों शलियों से लिखे गये ग्रन्थो के स्वाध्याय से कथा-वस्तु की जानकारी मे पर्याप्त योग मिला पर उसकी विविधता ने उतनी ही जटिलता भी प्रस्तुत कर दी। एक ही कथा के अनेक रूप निर्णायकता में कठिनता उपस्थित कर रहे थे। अपनी मनीषा से ही किसी निष्कष पर पहुचकर आलेखन का प्रयत्न किया गया है। हो सकता है, बहुत सारे स्थला पर मत-भिन्नता तथा परम्परा की भिन्नता भी हो, पर सवसम्मतता के अभाव म एक ही प्रकार की कथा का ग्रहण आवश्यक भी था। जहा तक स्वय की मा यताओ का प्रश्न था, बहुत सारे स्थला पर उनका आग्रह न रखकर कथा वस्तु को ज्यो-का-त्यो रखा गया है ताकि तत्कालीन परिस्थितया के बारे में पाठक अपना निणय कर सकें। मैंने अपना निणय पाठको पर थोपन का यत्न नही किया है। बहुत सारे स्थला पर कथा वस्तु मे तनिक-सा परि वतन कर देन पर विशेष रोचकता भी हो सकती थी किन्तु प्राचीन कथाओ की मौलिकता को बनाये रखन के लिए ऐसा भी नही किया गया है।

जन कथा-साहित्य जितना विस्तीर्ण है उतना ही सरस भी है। आज तक वह आधुनिक भाषा म नही आया था, अत वह

अपरिचित भी रहा। मुझे यह अनुमान नही था कि पच्चीस भाग लिखे जाने के बाद भी उसकी थाह अज्ञात ही रहेगी। ऐसा लगता है, जैन कथा-साहित्य के छोर को पाने मे अनेक वर्षो की अनवरत तपस्या आवश्यक है। आगम, निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीका आदि मे कथाओ का विपुल भण्डार है। रास साहित्य ने उसमे विशेषत और अभिवृद्धि की है। ज्यो-ज्यो गहराई मे पहुचा जायेगा, त्यो-त्यो विशिष्ट प्राप्ति होती जायेगी तथा और गहराई मे घुसने के लिए उत्साह भी वृद्धिगत होता जायेगा।

मुझे प्रसन्नता है कि जैन कहानियो का समाज के सभी वर्गो मे विशेष समादर हुआ। कहना चाहिए, उसी कारण इस दिशा मे निरन्तर लिखते रहने का उत्साह जगा। आरम्भ मे योजना छोटी थी, पर अब वह स्वत काफी विस्तीर्ण हो चुकी है। पहली बार मे दश भाग पाठको के समक्ष प्रस्तुत हुए थे और अब वार अगले पन्द्रह भाग प्रस्तुत हो रहे हैं। इसी क्रम से बढते हुए शीघ्र ही सौ भागो को अपनी मजिल तक पहुचना है। भगवान् श्री महावीर के २५वी शताब्दि समारोह तक यदि यह कार्य सम्पन्न हो सका तो विशेष आल्हाद का निमित्त होगा।

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी के वरद आशीर्वाद ने साहित्य के क्षेत्र मे प्रवृत्त किया और अणुव्रत परामर्शक मुनि श्री नगराज जी डी० लिट्० के मार्ग-दर्शन ने उसमे गतिशील किया। जीवन की ये दोनो ही अमूल्य थाती है। मुनि विनयकुमार जी "आलोक" तथा मुनि अभयकुमार जी का सतत साहचर्य-सहयोग लेखन मे निमित्त रहा है।

—मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम'

१५ नवम्बर, ७०
दिल्ली।

अनुक्रम

अनुक्रम

१

केशव

कुण्डनपुर नगर मे यशोधर नामक एक व्यापारी रहता था। उसकी पत्नी का नाम रम्भा था। उसके दो पुत्र हुए, एक का नाम हस था और दूसरे का नाम केशव। दोनो ही भाइयो मे अच्छी मैत्री थी। दोनो साथ ही खेलते व पढते थे। एक दिन वे घूमते हुए एक उद्यान मे पहुँच गये। वहाँ उनका एक जैन मुनि से सम्पर्क हुआ। धार्मिक चर्चा चली। दोनो ही भाई कई घण्टे तक उस चर्चा में लीन रहे। मुनि ने उन्हे जीवन का स्वरूप समझाया और रात्रि-भोजन न करने की प्रेरणा दी। दोनो के ही हृदय मे यह बात जच गई। उन्होंने मुनिवर से निवेदन किया—"हम आपके समक्ष प्रतिज्ञा ग्रहण करते है कि आज से रात्रि-भोजन नही करेंगे।" मुनि ने उनकी इस भावना का अनुमोदन किया और व्रत मे सुदृढ रहने की प्रेरणा दी।

दोनों भाई घर आये। उनके मन मे अपार खुशी थी। सूरज को ढलते देखा, तो दोनो ने ही माँ से भोजन

माँगा। माँ समझ नहीं पाई कि आज दिन रहते ही खाना माँगने का क्या प्रयोजन है ? प्रतिदिन रात्रि में ही भोजन बनता था और घर के सभी सदस्य उसी समय खाते थे। माँ ने उनसे पूछा, तो अपनी प्रतिज्ञा के बारे मे उन्होने बता दिया। माँ को यह बहुत बुरा लगा। उसने दोनो को ही एक गहरी डाट दिखाई और फिर कभी ऐसा न करने के लिए कहा। उस दिन उनको भोजन नहीं मिला। प्रहर रात बीतने पर भोजन बना। यशोधर भोजन करने के लिए बैठा। उसने अपने दोनो पुत्रो को बुलाया और भोजन करने के लिए कहा। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया। यशोधर बहुत बिगडा। उसने कहा—"कल के बच्चे और धर्म की यह ठेकेदारी ? मैं कभी नहीं चलने दूंगा।" दोनों को ही बहुत डराया-धमकाया गया, पर, वे अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहे। कोई भी किसी को अपने से सहमत न कर सका।

यशोधर ने रात्रि-भोजन को कुलधर्म कह कर भी उन्हें सहमत करने का प्रयत्न किया, पर, उसे सफलता नहीं मिली। झल्लाकर उसने पत्नी से प्रच्छन्न रूप में कह दिया—"दिन मे भोजन तो दूर रहा, चने खाने को भी न दिये जायें। जब भूखे रहेंगे, अक्ल ठिकाने आ

जायेगी।"

हस और केशव ने सूर्यास्त से पूर्व माँ से अगले दिन फिर भोजन की याचना की। माँ का हृदय भी पत्थर बन गया। उसने उन्हे सीधा-सा उत्तर दिया—"भोजन रात मे ही बनेगा। प्रात. का बना हुआ भोजन भी अवशिष्ट नही है। रात्रि मे ही पिता के साथ भोजन करना। सुपुत्र वे ही होते है, जो पिता का अनुसरण करते है।"

माँ के कथन का प्रतिवाद करते हुए, दोनो बन्धुओ ने कहा—"पिता का सुमार्ग ही पुत्रो द्वारा अनुसरणीय होता है। पिता यदि कुए मे गिरे, तो क्या पुत्र भी उनके पीछे गिर जायेगे ? माताजी! क्या आपका हमे यही परामर्श है ?"

दोनो ही बन्धु बिना भोजन किये ही घर से निकल पडे। दुकान पर आकर काम मे संलग्न हो गये। यशोधर को जब यह मालूम हुआ, उसने सेठानी को और भी अधिक सजग कर दिया, किन्तु, दृढव्रती प्राणो का उत्सर्ग करता हुआ भी प्रण से विचलित नही होता। पिता ने रात्रि मे उन्हे भोजन करने के लिए आह्वान किया, पर, वे दोनो ही मुकर गये। अगले दिन सेठ ने उन्हे काम मे इस प्रकार नियुक्त किया कि कार्याधिक्य

से सूर्यास्त से पूव उन्हें भोजन की स्मृति भी नही हो सकी। रात्रि में पिता ने भोजन के लिए कहा, पर, व्रत-भग के लिये वे प्रस्तुत नही हुए।

पाँच दिन बीत गये। छठा दिन आया। दिन में भोजन मिलता नही और रात मे दोनों ही बन्धु भोजन करते नही। निराहार ही समय बीत रहा था। छठे दिन यशोधर ने दोनों को अपने पास बिठाया और मधुर शब्दों के प्रयोग से उन्हे व्रत से विचलित करने का प्रयत्न किया। उसने कहा— "जब तक तुम भोजन नही कर लोगे, तुम्हारी माँ भी भोजन नही करेगी। छ दिन मे वह भी उपोपित ही है। पड्मासीय तेरी भगिनी भी स्तन-पान से वचित है। तुम्हारे कारण कितने व्यक्ति पीडित हो रहे हैं। अपना दुराग्रह छोडो और सबके हित के लिये अनुचिन्तन करो। विद्वान् लोग भी रात्रि के प्रथम प्रहर की चौथी घटिका तक रात्रि-भोजन का दोष स्वीकार नही करते है। अभी तो केवल दो घडी ही रात गुजरी है। दुराग्रह से कही तुम्हारे सिर पर दो प्राणियो की हत्या का पाप न चढ जाये।"

हस भूख से व्याकुल हो रहा था। उसने दीन-भाव मे केशव की ओर देखा। केशव ने जाना, हस के परिणाम चलित हो गये ह। उसने पिता की ओर उन्मुख

हो कर कहा— " जैसे मुझे सुख होगा, मै करूँगा। पुत्र का माता के प्रति यही कर्तव्य होता है कि वह उसे धर्म-कार्य मे नियोजित करे। आप मुझे पुन:-पुन भोजन के लिए बाधित क्यो कर रहे है ? मै दृढ निश्चयी हूँ, किसी भी परिस्थिति मे अपने व्रत को भंग नही करूँगा।"

श्रेष्ठी यशोधर की आँखो मे खून उतर आया। उसने कडकते हुए कहा—"कुपुत्र ! यदि तुझे मेरा कथन स्वीकार नही है, तो मै भी तेरे जैसे व्यक्तियों को अपने घर मे रख कर घर को कलकित करना नही चाहता। निकल जा, मेरे घर से। मै तुझे देखना भी नही चाहता।"

केशव की व्रत-दृढता को वह चुनौती थी। उसने उसे सहर्ष स्वीकार किया। वह घर से निकल पड़ा। हंस भी उसके साथ जाने को उद्यत हुआ, किन्तु, यशोधर ने उसका हाथ पकड लिया। उसे प्रलोभन देकर अपने विचारो से प्रभावित कर लिया। वह पिता के साथ भोजन के लिए बैठ गया। केशव अकेला रह गया। एक बार उसके सामने समस्या-सी प्रतीत हुई, किन्तु, उसने अपने आत्म-बल के सहारे उसे नगण्य समझा। वह चलता हुआ बहुत

दूर निकल गया। रात्रि का नीरव समय, चारों ओर अन्धेरा, फिर भी वह आनन्द के साथ अपने मार्ग पर बढता ही जा रहा था। उसे एक यक्ष-मन्दिर दिखाई दिया। वहाँ सैकडो भक्त यक्ष को प्रसन्न करने के निमित्त पूजा, यज्ञ, हवन आदि नाना अनुष्ठानो से निवृत्त होकर भोजन करने के लिए बैठे थे। केशव को अपनी ओर आते देख कर सारे ही खडे हो गये और उसका आतिथ्य करने लगे। सभी व्यक्तियो ने उससे भोजन करने का आग्रह किया और कहा—'अतिथि को भोजन कराना तो हमारा श्रेष्ठ धर्म है। जब तक अतिथि खाना नही खा लेता, अपने नियमानुसार हम भी खाना नहीं खा सकते, अत महाभाग! इस प्रार्थना को स्वीकार करो।"

केशव की दृढता की वह दूसरी परीक्षा थी। वह असमजस मे पड गया। यदि खाना खाता है, तो प्रतिज्ञा भग होती है और नही खाता है, तो निमन्त्रण देने वालो के अतिथि-धर्म का उल्लघन होता है। वे उसके इतने पीछे पडे कि केशव का वहाँ से छुटकारा होना असम्भव-सा हो गया। आखिर उसने साहस के साथ कह दिया—"कुछ भी हो, मैं अपनी प्रतिज्ञा को तो किसी भी परिस्थिति में नहीं तोड सकता। चाहे मुझे इसके

लिए कितने ही कष्ट क्यों न उठाने पड़े । जब घर ही छोड दिया, तो यहाँ आकर अपनी प्रतिज्ञा क्यो तोड़ूँ ?''

उपस्थित सभी व्यक्ति आवेश मे भर गये । उसे डाँटते हुए वे बोल पड़े—'' क्या तेरी प्रतिज्ञा का यही प्रयोजन है कि हमे अपने धर्म से भ्रष्ट करना ? हमने इतनी देर जो भी यज्ञ व अन्य क्रिया-काण्ड किये है, तेरे दुराग्रह के कारण सारे भ्रष्ट हो जायेगे । बिना तेरे खाना खाये कोई भी भोजन नही करेगा । जब सभी व्यक्ति भूखे मरेगे, तो बोल, इस प्रतिज्ञा की ओट मे तुझे कितना पाप लगेगा? धर्म वही हो सकता है, जहाँ किसी का दिल नही दुखाया जाता। जब तू हमे सताने के लिए ही उतारू हो रहा है, तो फिर सोच लेना, यदि हम भी तेरे पर इसी तरह टूट पडे, तो तेरी क्या दशा होगी ? वही व्यक्ति भला कहलाता है, जो जितनी सुरक्षा अपनी करता है, उससे भी अधिक जनता की करता हो ।''

सब तरह से केशव को समझाने का प्रयत्न किया गया, पर, वह अपने निर्णय से विचलित नही हुआ। केशव और वे पूजक परस्पर मे एक-दूसरे के पक्ष को काटते गये, पर, कोई किसी से सहमत नही हुआ । वाक्-युद्ध चल ही रहा था कि अचानक यक्ष की वह प्रतिमा



परस्पर एक-दूसरे के पक्ष को काटते गये पर कोई किसी से सहमत नहीं हुआ।

फटी और उसमे से एक दैत्य वाहर आया । वह केशव की ओर वढा । आखे लाल कर वोला—"केशव ! तुझे इतना घमण्ड ? मेरे ये भक्त भूखे बैठे रहेगे और तू अपनी प्रतिज्ञा की दुहाई देता रहेगा ? चल खाना खा ले, वरना मुद्गर के एक प्रहार मे ही तेरा नामशेष हो जायेगा ।" केशव ने यह सब कुछ देखा । वह मन-ही-मन सोचने लगा—मेरी प्रतिज्ञा की यह अग्नि-परीक्षा है । यदि मै विचलित हो गया, तो फिर मेरा अस्तित्व भी समाप्त है । वह ध्यानस्थ वही खडा हो गया । उसने यक्ष द्वारा कही गई वात का कोई उत्तर नही दिया । वह तो इस निर्णय पर पहुंच चुका था कि मृत्यु से अधिक तो कोई दण्ड नही है। मुझे वह स्वीकार है । भय किस बात का ?

यक्ष केशव की भाव-भगिमा के द्वारा उसके हृदय को पहचान गया । उसे लगा कि मेरा भी इस पर कोई असर होने वाला नही है । अपनी बात को दूसरा मोड देते हुए उसने अपने भक्तो से कहा—"जिस गुरु के पास इसने व्रत ग्रहण किया है, उसे यहा ले आओ, ताकि वह इसे समझा-बुझाकर भोजन करा सके ।" अनुचर तत्काल दौड़े । उन्होने थोड़ी दूर जाकर एक कृत्रिम साधु को वनाया । उसका नाम रखा गया—धर्मघोष । उसे दृढ वन्धन से वाँध कर वे केशव के पास ले गये। वह बन्धन

से जकडा हुआ था, अत केशव को देखकर विलाप करने लगा। केशव ने उसकी ओर देखा। उसे यह समझते हुए समय नहीं लगा, यह भी माया का ही जाल है। यक्ष ने अवसर का लाभ उठाया। उसने मुनि को सम्बोधित करते हुए कहा—'तू अपने इस शिष्य को भोजन के लिए निर्देश दे, अन्यथा तुझे मृत्यु का ग्रास बना दिया जायेगा।''

मुनि ने केशव से कहा—" तेरे कारण मेरे प्राण सकट में हैं। तुझे इतना आग्रहशील नही होना चाहिए। देव, गुरु और सघ के लिए यदि कोई धार्मिक अकृत्य भी कर लेता है, तो वह अक्षम्य नही होता। रात्रि-भोजन न करने के अपने दुराग्रह को तुझे छोड देना चाहिये,यदि मेरे प्रति तनिक भो अपनत्व का विचार है।"

केशव ने तत्काल निषेध की भाषा में कहा—"मेरे गुरु रात्रि-भोजनका नियम दिलाते है। वे वीतराग-प्रणीत धर्म का आख्यान करते हैं। उस धम में भय को तनिक भी स्थान नही है। अत जो व्यक्ति भय से पाप का आदेश देता है, वह निश्चित ही मेरा गुरु नही हो सकता। यह सब यक्ष का प्रपच है।"

यक्ष की भृकुटि तन गई। उसने सरोष केशव से कहा—"पापात्मन्! तू शीघ्र ही भोजन कर, अन्यथा

तेरे गुरु की हत्या इसी क्षण करते हुए मै नही चूकूँगा।"

केशव ने प्रतिवाद करते हुए कहा—"यह मेरा गुरु नही है। मेरे गुरु तुम्हारे जैसे जालिमो के चगुल मे कभी नही फस सकते। उनकी ओर नजर उठाकर देखने का भी तुम्हारा साहस नही हो सकता।"

मुनि ने केशव की ओर उन्मुख होते हुए कहा—"केशव ! तुझे मेरे मे सन्दिग्ध नही होना चाहिये। मै वही गुरु हू, जिसके पास तू ने व्रत-ग्रहण किया है। तू भोजन कर, जिससे मेरी रक्षा हो सके।"

मुनि की आखो से अश्रु-धारा बह निकली। उसके स्वर घरघरा गये, शरीर कापने लगा और होठ धूजने लगे। यक्ष ने मुनि को पकडा और धरती पर गिरा दिया। मुनि मूच्छित हो गये। मुद्गर हाथ मे लेते हुए यक्ष ने कहा—"केशव ! अभी तक कुछ भी नही बिगडा है। यदि तुझे भोजन करना स्वीकार हो, तो मै तेरे गुरु को जिला सकता हूँ और तुझे बहुत बडा राज्य भी दे सकता हूँ। तेरे लिए समृद्धि की कोई कमी नहीं रहेगी। यदि तुझे यह स्वीकार नही है तो तेरी भी वही गति होगी, जो तेरे गुरु की हो रही है। इस मुद्गर से तेरे टुकडे-टुकडे कर डालूँगा।"

केशव उस विकट समय मे भी हस रहा था। दृढ

स्वरों मे उसने यक्ष से कहा—"यह मेरा गुरु नही है और यदि मृत को जिलाने का ही तुम्हारे मे सामर्थ्य है, तो तुम अपने सेवकों को क्यो नही जिलाते, जो यम के अतिथि बन चुके है। राज्य भी तुम मुझे दे सकते हो, किन्तु मेरा निवेदन है, वह तुम्हारे भक्तो को ही मुबारक हो। मुझे ऐसा राज्य नही चाहिए। मृत्यु अवश्यम्भाविनी है। आज या कुछ वर्षो वाद उसका सम्मान करना होगा। मुझे उसका तनिक भी भय नही है।"

यक्ष ने केशव के विचारो को पढा। उसे उसमें थोडा भी परिवतन दिखाई नहीं दिया। उसने अपनी बात को नया मोड दिया। प्रसन्नमना यक्ष ने केशव को अपनी बाहु मे भर लिया और सारी घटना की कलई खोलते हुए कहा—"निश्चित ही यह तेरा गुरु नही था। मैंने ही माया के द्वारा तेरी परीक्षा के लिए इसकी विकुर्वणा की थी। यह भी सही है, कोई भी किसी मृत को नही जिला सकता और न कोई किसी को राज्य ही दे सकता है।"

यक्ष के सकेत से उपस्थित व्यक्तियों ने बात को एक और मोड दिया। उन्होंने कहा—"तू सात दिन से उपोपित है। मार्ग-श्रम से भी तू क्लान्त हो रहा है। हमने भी तुझे काफी कष्ट दिया है, अत तू विश्राम कर।

तू यदि सूर्योदय के बाद भोजन करेगा, तो हम भी सूर्योदय के बाद ही भोजन करेंगे।" उन्होने उसे एक बिस्तर दिया। केशव लेट गया। शीघ्र ही वह निद्राधीन हो गया। कुछ समय बाद ही यक्ष ने उसे उठाया और कहा—"महाभाग! प्राची ने अपनी किरणे फैला दी हैं। सूर्य निकल चुका है। तेरी प्रतिज्ञा भी पूर्ण हो चुकी है। भोजन कर।"

आखे मलता हुआ केशव खडा हुआ। उसने चारो ओर दृष्टि डाली, तो ऐसी प्रतीति हुई कि सूरज निकल चुका है, किन्तु, मन उसकी साक्षी नही भरता था। उसके मन मे यह रह-रह कर आ रहा था कि थोडी देर पहले मै सोया था। इतनी जल्दी रात बीतनी तो नही चाहिए। उसने थोडे गौर से देखा, तो उसका सन्देह ठीक निकला। वस्तुत सूरज नही निकला था, अपितु केशव की प्रतिज्ञा भग करने के निमित्त वह एक षड्यन्त्र रचा गया था। केशव ने उसे ताड़ लिया और कह दिया--"वास्तविक सूर्य अभी उदय नही हुआ। यह तो कृत्रिम सूर्य है। मै अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ हू और अभी भोजन नही कर सकता।"

सैंकडो व्यक्तियो व यक्ष ने भय व छल दोनो ही प्रकार से केशव को छलने का प्रयत्न किया, पर, वे सफल

न हुए। सब का एक ही प्रकार का आग्रह देखकर केशव फिर ध्यानस्थ खड़ा हो गया। दो-एक क्षण बाद कोलाहल स्वतः शान्त हुआ। केशव की आँखें अपने आप खुल गईं। सामने न तो सैंकड़ों आदमी थे, न भोजन था, न यक्ष, न मन्दिर और न वहाँ किसी प्रकार का आग्रह। केशव तो अकेला खड़ा था और उस पर पुष्प-वृष्टि हो रही थी। जय विजय शब्दों से वह बधाया जा रहा था। उसके सामने एक दिव्य पुरुष खड़ा था। केशव को सम्बोधित करते हुए उसने कहा—'तुम अपनी प्रतिज्ञा को निभाने में पूर्णतः सफल हो। यह तो तुम्हारी परीक्षा हो रही थी। जिस दृढ़ता के साथ तुमने नियम ग्रहण किया था, आज भी उसी दृढ़ता के साथ तुम उसे निभा रहे हो इसके लिये तुम धन्यवादार्ह हो। एक दिन इन्द्र ने अपनी सभा में तुम्हारी दृढ़ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। सभी देव उससे सहमत थे, किन्तु, मैं(यही देव) उस अभिप्राय से सहमत नहीं था, अतः परीक्षा के लिए आया। मुझे प्रसन्नता है कि तू अपनी प्रतिज्ञा में पूर्णतया अडिग है। मैंने तुझे कष्ट दिया, अतः क्षमा प्रार्थी हूँ। तू वर माँग।''

नम्रता पूर्वक केशव बोला—"मेरी तो केवल एक अभिलाषा है कि मैं अपनी प्रतिज्ञा का आजीवन अच्छी

तरह पालन कर सकूँ। इसके अतिरिक्त मुझे और कोई आवश्यक्ता नही है।"

दिव्य पुरुप ने कहा— "फिर भी मै तुझे कुछ देना चाहता हूँ, तू माँग।"

केशव—"मुझे तो किसी पदार्थ की आवश्यकता नही है। मै स्वय तृप्त हूँ।"

दिव्य पुरुप—"दृढप्रतिज्ञ की सेवा का कुछ लाभ तो मुझे भी मिलना चाहिए।"

केशव—"यह आपकी इच्छा।"

दिव्य पुरुप—"मै तुझे यह वरदान देता हूँ कि तेरा चरणागुष्ठक धोकर जिसे भी पिलाया जायेगा, वह सर्वथा रोग-मुक्त हो जायेगा। कष्ट के समय तेरा जो भी चिन्तन होगा, वह कार्य उसी प्रकार हो जायेगा। पुण्यवान् के लिए कुछ भी दुष्कर नही है।" देव ने केशव को उठाया और एक नगर के समीप छोड दिया। वह अदृश्य हो गया। प्रात कालीन कृत्यो से निवृत्त होकर उसने नगर मे प्रवेश किया। वह एक धर्म-परिषद् मे पहुँच गया। आचार्य धर्मसूरि देशना दे रहे थे। वह नमस्कार कर उपयुक्त स्थान पर वैठ गया।

नगर का नाम साकेत था। वहा का राजा धनंजय था। वह बहुत दिनो से विरक्त था। साधु वनना चाहता

था, किन्तु, उसके कोई भी पुत्र नही था, अत उत्तराधिकारी का प्रश्न उसे बार-बार विखिन्न-सा कर देता था । प्रवचन के अनतर राजा ने आचार्य से प्रार्थना की —"प्रभो! रात को स्वप्न में मुझे ऐसा आभास मिला कि आज आपकी सभा में आने वाला नवीन व्यक्ति मेरे सयम में सहयोगी होगा और मुझे वह चिन्ता-मुक्त करेगा । मैं जानना चाहता हूँ कि इस समुदाय में वह व्यक्ति कौन है और मुझे वह स्वप्न कैसे आया ?"

आचार्य ने अपने ज्ञान-बल से सारी परिस्थिति को जान लिया। उन्होंने केशव की ओर सकेत करते हुए कहा—'वह व्यक्ति केशव है, जो कि उस कोने मे बैठा है। यह सब आभास केशव की दृढ प्रतिज्ञा की अग्नि-परीक्षा करने वाले वह्निदेव ने तुम्हें दिया था।"

राजा धनजय फूला नहीं समाया । उसी समय वह केशव के पास आया उसे गले लगाया और अपने महलो में ले गया । केशव का राज्याभिषेक किया गया और धनजय दीक्षित हो गया ।

केशव एक दिन अपने महलों के गवाक्ष मे बैठा राजमार्ग पर आने-जाने वाले व्यक्तियों को देख रहा था । अचानक उसकी दृष्टि एक वृद्ध पुरुष पर पडी । उसके कपडे फटे हुए थे और दरिद्रता पूरी तरह से उस

पर छा रही थी । केशव ने उसे पहचान लिया । वह उसका पिता यशोधर था । वह तत्काल दौड़ा और उसके चरणो मे गिर पड़ा । केशव को राजा के रूप मे पाकर पिता के हर्ष का पार न रहा । उसने उसे छाती से भीड़ लिया । दोनो ओर से सुख-दुख की बाते हुईं । केशव की आप-बीती जब उसने सुनी, तो प्रतिज्ञा के प्रति सहज आकर्षण हुआ । हंस को साथ न देखकर केशव ने खिन्नता के साथ पूछ लिया—"भाई कहा है ?" पिता की आखे डबडबा आई । उसने कहा—जिस दिन तूने घर छोड़ा था, मैंने उसी दिन उसका नियम तुड़वा दिया था । रात को जब खाना खाने के लिए बैठा, उसके भोजन के ऊपर बैठे नाग का विष टपक पड़ा । उसे कुछ मालूम नही हुआ । थोड़ी देर मे विष सारे शरीर में फैल गया । हमने उसको बचाने के बहुत प्रयत्न किये । एक मान्त्रिक से उसका उपचार कराया गया । मान्त्रिक ने कहा—"विष के प्रभाव से इसके अंगोपांग गलकर गिर जायेंगे । एक महीने से अधिक यह जीवित नही रह सकेगा ।" पांच दिन तक मै उसके पास रहा । तुझे खोजने के अभिप्राय से घूमता हुआ मै यहा तक पहुंचा हू । पुण्य का योग था, तेरे से साक्षात्कार हो गया । घर से प्रस्थान किये आज एक

मास पूरा हो रहा है।" लम्बा नि श्वास छोडते हुए श्रेष्ठी यशोधर ने कहा—"हस का क्या पता है ? वह इस देह मे रहा है या नही ?"

केशव का भ्रातृत्व उमड पडा। वह सोचने लगा, यहा से हस सौ योजन दूर है। मैं वहा कैसे पहुच पाऊगा। चिन्तामग्न केशव ने आखें खोली। पिता के साथ वह हस के पास मे था। हस के शरीर से दुर्गन्ध उछल रही थी। सारे ही अगोपाग गल चुके थे। केशव उस दृश्य को देख न सका। वह्निदेव केशव के समक्ष खडा था। उसने कहा—"तुम्हारे अभिप्राय को मैंने अवधिज्ञान से जान लिया था। मैं ही पिता के साथ तुझे लेकर यहा आया था। मैंने तुझे जो वरदान दिया था, क्या उसे तू भूल गया है ?'

देव अन्तर्धान हो गया। केशव ने अपने पैर के अगूठे को पानी से प्रक्षालित कर हस के शरीर पर डाला। हस तत्काल स्वस्थ हो गया। उसके सभी अगोपाग नवीन की तरह ही उद्भासित होने लगे। उसका चेहरा चमकने लगा। पारिवारिको ने मिलकर महोत्सव मनाया।

केशव के चामत्कारिक प्रयोग की चर्चा नगर मे सर्वत्र होने लगी। बहुत सारे रुग्ण नागरिको ने उसके

प्रक्षालित पानी का प्रयोग किया और वे भी नीरोग हो गये । केशव का चमत्कार सुदूर प्रदेशो तक भी फैल गया । राजा केशव अपने परिवार के साथ अपने राज्य में लौट आया । वहां के नागरिकों ने उस पानी का संग्रह किया और निधान की तरह अपने घरों मे रखने लगे । राजा केशव ने उद्घोषणा-पूर्वक सारे देश मे रात्रि भोजन का निवारण करवा दिया । नागरिक भी चमत्कारपूर्ण स्थिति से प्रभावित हुए और रात्रि-भोजन के व्रत का पालन करने लगे । केशव ने भी अन्तिम समय तक राज्य का पालन किया और रात्रि-भोजन-परित्याग के व्रत से अनेक सम्पदाएं प्राप्त कीं ।



मास पूरा हो रहा है।" लम्बा नि श्वास छोडते हुए श्रेष्ठी यशोधर ने कहा—"हस का क्या पता है ? वह इस देह मे रहा है या नही ?"

केशव का भ्रातृत्व उमड पडा। वह सोचने लगा, यहा से हस सौ योजन दूर है। मैं वहा कैसे पहुच पाऊगा। चिन्तामग्न केशव ने आखें खोली। पिता के साथ वह हस के पास मे था। हस के शरीर से दुर्गन्ध उछल रही थी। सारे ही अगोपाग गल चुके थे। केशव उस दृश्य को देख न सका। वह्निदेव केशव के समक्ष खडा था। उसने कहा—"तुम्हारे अभिप्राय को मैंने अवधिज्ञान से जान लिया था। मैं ही पिता के साथ तुझे लेकर यहा आया था। मैंने तुझे जो वरदान दिया था, क्या उसे तू भूल गया है ?'

देव अन्तर्धान हो गया। केशव ने अपने पैर के अगूठे को पानी से प्रक्षालित कर हस के शरीर पर डाला। हस तत्काल स्वस्थ हो गया। उसके सभी अगोपाग नवीन की तरह ही उद्भासित होने लगे। उसका चेहरा चमकने लगा। पारिवारिकों ने मिलकर महोत्सव मनाया।

केशव के चामत्कारिक प्रयोग की चर्चा नगर में सवत्र होने लगी। बहुत सारे रुग्ण नागरिको ने उसके

प्रक्षालित पानी का प्रयोग किया और वे भी नीरोग हो गये। केशव का चमत्कार सुदूर प्रदेशों तक भी फैल गया। राजा केशव अपने परिवार के साथ अपने राज्य में लौट आया। वहां के नागरिकों ने उस पानी का संग्रह किया और निधान की तरह अपने घरों में रखने लगे। राजा केशव ने उद्घोषणा-पूर्वक सारे देश में रात्रि भोजन का निवारण करवा दिया। नागरिक भी चमत्कारपूर्ण स्थिति से प्रभावित हुए और रात्रि-भोजन के व्रत का पालन करने लगे। केशव ने भी अन्तिम समय तक राज्य का पालन किया और रात्रि-भोजन-परित्याग के व्रत से अनेक सम्पदाएं प्राप्त कीं।



२

चारुदत्त

चम्पानगरी मे भानु श्रेष्ठी रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुभद्रा था। पुत्र का नाम चारुदत्त था। चारुदत्त अध्ययन का व्यसनी था। प्रात-साय, दिन में, रात में पुस्तकें पढने के अतिरिक्त अन्य किसी काम में उसका मन नही लगता था। जब वह यौवन में आया, भानु श्रेष्ठी ने उसका विवाह अपने मामा की कन्या मृगावती के साथ किया। मृगावती जब महलो में दीपक जलाती, चारुदत्त उसके प्रकाश मे पुस्तक पढ़ने के लिए बैठ जाता था। मृगावती की ओर उसका तनिक भी आकर्षण नही था। पूरी रात पुस्तक पढ़ने मे ही विता देता था।

भानु श्रेष्ठी और सुभद्रा चारुदत्त की इस प्रवृत्ति पर विशेष चिंतित थे। उन्होने अनेक प्रयत्न किये, पर, एक भी सफल नही हुआ। उनका चिन्तन था, गृहस्थ-व्यवहार मे कोरा रहकर यदि यह केवल पुस्तक-कीट ही बना रहा, तो इससे क्या होना जाना है। कोई

ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे यह व्यवहार-कुशल हो सके। वहुत चिन्तन के वाद श्रेष्ठी ने निश्चय किया, चारुदत्त को कुछ समय किसी योग्य वेश्या के पास रखना चाहिए। पुस्तको की चाट स्वत. समाप्त हो जायेगी और व्यवहार-कुशल भी हो सकेगा।

दुर्गुण के माध्यम से किसी दुर्गुण को निकालने का प्रयत्न करना, किसी भी स्थिति मे उचित नहीं कहा जा सकता। कण्टक से कण्टक निकाला जा सकता है, पर, दुर्गुण से दुर्गुण को निकालना कतई उपयुक्त नही कहा जा सकता। इससे एक स्थिति मे सम्भवत सुधार हो सकता है, किन्तु, भावी परिणाम सदैव घातक होता है। श्रेष्ठी ने इस ओर ध्यान नही दिया। उसने चारुदत्त को वसन्त सेना वेश्या के घर पहुंचा दिया। जव भाग्य पलटा खाता है, तो साधन-सामग्री भी वैसी ही उपलब्ध हो जाती है। वेश्या ने चारुदत्त का पुस्तक-व्यसन थोडे ही समय मे छुडवा दिया और अपने प्रति अनुरक्त कर लिया। चारुदत्त को पहले पुस्तक के अतिरिक्त अन्य कोई भी दिखाई नही देता था और अव वेश्या के अतिरिक्त अन्य कोई दिखाई नही देता। समय बीतता गया। क्रमश वारह वर्ष पूरे हो गये। चारुदत्त जितना भी धन मगाता, भानु श्रेष्ठी उतना

ही भेज देता। इस अवधि मे सोलह करोड मुद्राए श्रेष्ठी के घर से वेश्या के घर पहुच चुकी थी। प्रतिदिन इतना बडा व्यय कोटयधीश को भी रक बना देता है, यदि उसकी आय का माध्यम सुदृढ न हो। श्रेष्ठी निधन हो गया। लम्बे समय से घर मे पुत्र की अनुपस्थिति भी उसे खलने लगी। वह दु खित हो गया। चारुदत्त को पुन घर बुलाने के उसने बहुत प्रयत्न किये, किन्तु, वह घर नही आया। एक क्षण भी वह वेश्या को नही छोड सकता था। माता-पिता दु ख से विशेष पीडित हुए और मृत्यु ने उन्हें लील लिया।

जब तक धन की आय होती है, वेश्या सम्मान करती है और जब उसका स्रोत सूख जाता है, वहा से सभी का निर्वासन हो जाता है। वर्षो का प्रेम एक क्षण मे टूट जाता है। चारुदत्त के माता-पिता के निर्धन से व गरीवी से धन का आयात बन्द हो गया। वेश्या वसन्तसेना ने चारुदत्त को अपने घर से निकाल दिया। मार्ग मे मिलने वाले व्यक्तियो से पूछता हुआ वह अपने घर पहुचा। घर की वडी बुरी हालत हो रही थी। मकान टूट-फूट गये थे और सम्पदा विलीन हो चुकी थी। माता-पिता की मृत्यु के दु खद समाचार ने भी उसे विह्वल कर दिया था। घर के

बाहर बैठा ही वह सिर पकड कर कलपने लगा और रह-रह कर बोलने लगा—"मेरे जैसे कुपुत्रों को धिक्कार है। वेश्या-व्यसन से सम्पत्ति को मिट्टी में मिला दिया और माता-पिता की मृत्यु मे भी मैं निमित्त बना।"

मृगावती ने अपने द्वार पर किसी व्यक्ति को रोते देखा तो वह बाहर आई। उसने अपने पति को पहचान लिया। वह उसके पास आई और घर में ले गई। उसने उसे धीरज बधाया और स्नान, भोजन आदि से उसे सत्कृत किया। मृगावती ने चारुदत्त का साहस बढ़ाते हुए कहा—"आप मेरे आभूषण ले जाये। उनके माध्यम से व्यवसाय करे और धनार्जन कर अपनी कीर्ति की पुन. स्थापना करे। लक्ष्मी साहसी व्यक्ति के द्वार पर ही घूमा करती है।"

रोटी की समस्या प्रतिदिन की होती है। उसकी अवहेलना कर व्यक्ति कभी भी सफल नही हो सकता। चारुदत्त ने मृगावती का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। आभूषण लेकर मामा के साथ किसी सार्थ के माध्यम से देशान्तर की ओर चल पड़ा। वे दोनो ही घूमते हुए सीरावर्त नगर पहुँचे। उनके पास पूँजी की अल्पता थी, अत. कोई विशष व्यवसाय तो हो नही सकता था।

उन्होने रूई खरीदी । गाडो मे लाद कर वे ताम्रलिप्ति नगर की ओर चल पडे। उद्यान मे साथ का पडाव हुआ । सहसा आग लग गई । रूई बल-जल कर भस्म हो गई । पास में जो थोडी-सी पूँजी थी, वह भी समाप्त हो गई। मामा ने सोचा, चारुदत्त दुर्भागी है। इसके साथ रहने से मेरा भाग्य भी कैसे फल सकेगा ? उसने उसका साथ छोड दिया और अकेला ही चल पडा ।

चारुदत्त को किसी का भी आधार नही था। उसका भाग्य भी उसको साथ नहीं दे रहा था । फिर भी वह अकेला ही घूमता हुआ प्रियगु नगर पहुचा। एक दिन सन्ध्या के समय जब कि वह असहाय-सा घूम रहा था, वणिक् सुरेन्द्रदत्त ने उसे देखा । वह भानु श्रेष्ठी का मित्र था । चारुदत्त को मित्र का पुत्र जानकर वह उसे अपने घर ले आया। चारुदत्त को वहा रहते हुए काफी दिन बीत गए । एक दिन उसने शहर मे समुद्र-यात्रा की चर्चा सुनी। उसने भी उस यात्रा के लिए जाने का निश्चय किया । सुरेन्द्रदत्त से जब उसने परामर्श किया, तो उसने उसे निषेध किया । पर, चारुदत्त को वह परामर्श उचित नही लगा । सुरेन्द्रदत्त के बार-बार निषेध किये जाने पर भी वह समुद्र-यात्रा के

लिए चल पडा। जहाज आगे-से-आगे बढते गये। चारुदत्त के मस्तिष्क मे नाना योजनाए आकार ले रही थी। समुद्र को लाघ कर जहाज एक द्वीप के तट पर रुके। सभी अपने-अपने व्यावसायिक कार्यो मे सलग्न हो गए। चारुदत्त ने भी रकम पास मे न होने पर भी व्यवसाय किया। उसके भाग्य ने उसे कुछ साथ दिया। उसने तेतीस करोड मुद्राएं अर्जित की। उसके पैर धरती पर नही टिक रहे थे। अपनी पत्नी व अन्य पारिवारिक जनों से मिलने की उसकी उत्कण्ठा तीव्र हो उठी। उसने व्यवसाय स्थगित कर दिया और उपार्जित धन-राशि लेकर जन्म-भूमि की ओर लौट पडा।

निराशा मे आशा और आशा मे निराशा के अंकुर फूटते ही रहते है। चारुदत्त के जहाज समुद्र मे से जा रहे थे। अचानक तूफान आया और वे टूट गए। सारी सामग्री समुद्र के विवर मे समा गई। चारुदत्त का आयुष्य प्रलम्ब था, अत उसके हाथ मे एक काष्ठ-फलक आ गया। उसके सहारे तैरता हुआ वह किनारे पर पहुच गया। पास ही मे राजपुर नगर था। उसके वाहर एक वृक्ष के नीचे वैठा हुआ वह अपने जीवन का लेखा-जोखा मिला रहा था। एक परिव्राजक घूमता

हुआ उधर से निकला। चारुदत्त ने उसके तेजस्वी मुख-मण्डल को देखा। उसने सोचा, यह कोई असाधारण पुरुष है। इसके पास कोई अद्भुत कला होनी चाहिए। चारुदत्त ने करबद्ध होकर उसे नमस्कार किया। आगन्तुक परिव्राजक ने उसके प्रति वत्सलता दिखलाई और कहा—"तुम दु खित-से दिखाई कैसे दे रहे हो ?" चारुदत्त ने अपनी परिस्थिति बतलाई। परिव्राजक ने कहा—"मेरी विद्यमानता मे भी तू निधन ? कभी नही रह सकता। मेरे साथ चल, तेरी सारी निर्धनता दूर हो जायेगी।" इस आश्वासन से चारुदत्त बहुत सन्तुष्ट हुआ। वह परिव्राजक के साथ हो लिया और उसकी सेवा में तत्पर रहने लगा।

विपदा कभी भी पूर्व सूचना देकर नही आती। वह तो अचानक आ धमकती है और ऐसे क्षणो मे जब कि चारो ओर उल्लास छितरा हुआ होता है। चारुदत्त प्रसन्नमन परिव्राजक के साथ जा रहा था। वे दोनो एक भयकर जगल मे पहुँचे। वहीं एक पर्वत था। वहीं एक गुफा थी। उसके द्वार खोल कर वे दोनो आगे बढे। एक कुआँ आया। उससे भयकर दुर्गन्ध उछल रही थी। परिव्राजक ने चारुदत्त के हाथ मे एक तुम्बा दिया और कहा—"इसे लेकर तू इस



परिव्राजक ने चारुदत्त के हाथ मे एक तुम्बा दिया और कहा "इसे लेकर तू इस कुए मे उतर जा।"

कुएँ मे उतर जा। कुएँ में एक प्रकार का रस है। तुम्बे को उस रस से भर लेना। पहले मुझे रस से भरा हुआ तुम्बा पकडा देना और फिर मैं तुझे बाहर निकाल लूगा। यह रस देवो के लिए भी दुर्लभ है। इसके एक बिन्दु से ही बहुत सारा ताम्बा तत्काल सोने मे बदल जाता है।" चारुद एक छोटी मचा पर बैठा। परिव्राजक ने तुम्बे के साथ उसे कुएँ मे उतार दिया। चरुदत्त रस के निकाट पहुँचा। उसने ज्यो ही तुम्बे को रस से भरने के लिए हाथ बढाया, त्यो ही एक आवाज आई—"भद्र पुरुप! तू रस को मत ले।" विस्मित चारुदत्त ने प्रत्युत्तर में कहा—"मैं भानु श्रेष्ठी का पुत्र हूँ। एक परिव्राजक की आज्ञा से रस ले रहा हूँ। तुम मुझे निषेध क्यो कर रहे हो?"

पुन आवाज आई—"मैं सायात्रिक (जहाजों का व्यापारी) हू। एक बार जब कि समुद्र से जा रहा था, अचानक मेरा जहाज टूट गया। काष्ठ-फलक हाथ लग जाने से मै बाहर आया। यही परिव्राजक मुझे मिला। रस का प्रलोभन देकर यह मुझे यहाँ ले आया। जिस प्रकार तुझे इसने उतारा है, मुझे भी इसने इसी कुएँ मे उतारा था। रस से भरा तुम्बा इसने ले लिया और मुझे कुएँ मे धकेल दिया। यही व्यवहार तेरे

लगा। कुछ क्षणो में स्वय ही वह आश्वस्त हुआ। सोचने लगा, तूने सघन कम किये है। उनके फल यहा भोग रहा है। अभी भी नही सम्भला और इसी प्रकार आर्त्तध्यान करता रहा, तो न मालूम भविष्य में क्या स्थिति होगी ? उसने अपने विचारों को अध्यात्म की ओर मोडा। अरिहत, सिद्ध, साधु व धम का उसने स्मरण किया। प्रणतिपात आदि आश्रव द्वारों का सावधि प्रत्याख्यान किया और सागारी अनशन कर समाधि मे लीन हो गया।

व्यक्ति जव भी अध्यात्म का अनुचिन्तन करता है, सहज शान्ति का अनुभव होता है। उस समय कुछ निमित्त ऐसे भी हो जाते ह, जो तात्कालिक कष्ट से भी व्यक्ति को उवार लेते हैं। कुए में गिरे हुए उस पहले व्यक्ति ने भी उसे धीरज वधाया और कहा—"तेरे वचने का एक उपाय है। आज से तीसरे दिन यहाँ रस पीने के लिए एक गोह आयेगी। उस ममय तू उसकी पूछ पकड कर वाहर निकल सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं ह।" चारुदत्त को इससे विशेष प्रसन्नता हुई और वह मावधान होकर बैठ गया। पहले गिरे हुए मनुष्य का शरीर मारा गल चुका था, अत परमेष्ठी पचक का स्मरण करता हुआ वह प्रेत्यधाम-

वासी हो गया ।

तीसरे दिन गोह वहाँ आई । रस पीकर ज्योंही **वह वापस लौटने** लगी, चारुदत्त उसकी पूछ पकड़ कर बाहर आ गया । कुछ देर वहाँ बैठा नवकार मंत्र का स्मरण करता रहा । आगे चला । कुछ ही मार्ग तय कर पाया था कि एक वन-महिष उसे मारने के लिए दौड़ा । चारुदत्त दौड़कर पर्वत पर चढ़ गया । महिष मार्ग रोक कर वही बैठ गया । पर्वत की गुफा से एक अजगर निकला । वह उस महिष को निगल गया । चारुदत्त का मार्ग निर्विघ्न हुआ, तो वह पर्वत से उतरा और अटवी को लांघ कर एक ग्राम मे पहुँचा । भानु-श्रेष्ठी का एक मित्र रुद्रदत्त वहाँ रहता था । चारुदत्त को उसने पहचान लिया । वह उसे अपने घर ले आया । चारुदत्त कुछ दिन वहाँ ठहरा ।

चारुदत्त का भाग्य न मालूम अभी भी उसे और कहाँ-कहाँ ले जाने को उतावला हो रहा था । चारुदत्त और रुद्रदत्त ने एक योजना बनाई । उसके अनुसार वे दोनो स्वर्ण-भूमि की ओर चले । वेगवती नदी को लाँघ-कर वे टंक देश पहुँचे । आगे का मार्ग बहुत विषम था । पद-यात्रा से उसे लाँघ पाना अत्यन्त दुष्कर प्रतीत हो रहा था । उन्होने दो बकरे ले लिए और उन पर बैठ-

कर यात्रा करने लगे। स्वर्ण-भूमि अभी भी बहुत दूर थी। रुद्रदत्त ने चारुदत्त से कहा—"इस प्रकार चलकर तो पहुँच पाना अत्यन्त कठिन है। कोई उपाय सोचना चाहिए, जिससे हम सुगमता से वहाँ पहुँच सकें। दोनो ही विचार-मग्न हो गये। रुद्रदत्त ने अचानक कहा—"एक सुगम उपाय है।" चारुदत्त ने उत्सुकतापूवक पूछा तो रुद्रदत्त ने कहा—"बकरो को मार कर हम इनकी मशक बना लें। उसमे घुस जायें। माँसलोभी कोई भारण्ड पक्षी आयेगा, तो अपनी चोच में दोनो को उठाकर ले जायेगा। वह जब स्वर्ण-भूमि मे मे उतरेगा, तो अपना काम स्वत हो जायेगा।

चारुदत्त को यह सुझाव उचित प्रतीत नही हुआ। रुद्रदत्त की वात को काटते हुए उसने कहा—"जिनके माध्यम से हमने विकट जगल पार किया, क्या उनके प्रति हमारा यह व्यवहार हो ? कष्ट की जैसी अनुभूति हमे होती है, वैसी इन्‍ह भी होती है। इसलिये वध का यह विचार त्याग देना चाहिए।"

रुद्रदत्त न चारुदत्त के विचारो की आलोचना करते हुए कहा— 'क्या वे दोनो अपने पिता है, भाई है या पारिवारिव है ? अपने काय की सफलता को प्राथमिकता देनी चाहिए। ये तो मनुष्य के उपभोग के लिए ही हैं

चारुदत्त ने रुद्रदत्त के विचारो का फिर प्रतिवाद किया। रुद्रदत्त ने दृढ़ता के साथ कहा—"मै तो अपने वकरे को मारूगा ही।" रुद्रदत्त कहने तक ही सीमित नही रहा। उसने अपने वकरे को मार दिया और उसकी चमड़ी उतार ली। चारुदत्त से उसने कहा—"यह कार्य तेरे से होने का नही है। अपने वकरे से निवट कर मै तेरी ओर भी आऊगा।" चारुदत्त सावधान हो गया। वह अपने वकरे के पास आया। उसने कहना आरम्भ किया–"तूने पूर्व भव में प्राणि-वध किया था, उसके परिणाम स्वरूप यहाँ भी तेरा वध होने वाला है। पाच आश्रव द्वार का तुझे त्याग कर देना चाहिए। अरिहन्त, सिद्ध, साधु व धर्म का शरण ग्रहण कर। सव जीवो से क्षमा-याचना कर। क्रोध को छोड़ दे और मैत्री भाव का संचार कर।" चारुदत्त ने वकरे के कान मे पुन -पुन. नवकार मंत्र का उच्चारण आरम्भ कर दिया। रुद्रदत्त ने अपने वकरे का काम तमाम कर चारुदत्त के वकरे को भी मार दिया। उसकी भी मशक वनाई। चारुदत्त को उसमे विठलाया और स्वय अपने मशक मे आकर बैठ गया। दोनो ही भारण्ड पक्षियो की प्रतीक्षा करने लगे। सयोगवश दो भारण्ड पक्षी उधर से निकले। रुद्रदत्त का अनुमान सही निकला।

चारुदत्त ने अपनी आत्म-कहानी सुनाई। उस समय वह धीरज नही रख सका। ज्यो-ज्यो उसे अपने पूर्व जीवन की घटनाओं की स्मृति होती, उसकी आखे वरस पड़ती थी। मुनिवर ने उसे उपदेश दिया—"संसार में आपदाए सर्व-सुलभ है। सम्पदाएं दुलर्भ है। कर्म-वन्धन का उल्लंघन करने मे शक्र भी समर्थ नही है। आर्त्तध्यान के माध्यम से तू नवीन कर्मो का वन्धन न कर।"

मुनिवर का उपदेश चालू था। उसी समय आकाश-मार्ग से दो पुरुष आये और उन्होने मुनिवर को नमस्कार किया। चारुदत्त ने उनका स्वागत किया और उनका परिचय जानना चाहा। उन्होंने कहा—"हम वैताढ्य पर्वत से आये है और मुनिवर के संसार-पक्षीय पुत्र है। मुनिवर को वन्दना करने, पर्युपासना करने और उपदेश सुनने के लिए आये है।

आश्चर्य मे आश्चर्य हुआ ही करता है। चारुदत्त और आगन्तुक विद्याधरो का वार्तालाप चल रहा था। अचानक आकाश मे देव-दुन्दुभि वज उठी। ज्यो ही उसने आकाश की ओर देखा, सभी दिशाओं को आलोकित करने वाला एक विमान दिखाई दिया। वह उधर ही आ रहा था। विमान से एक देव वाहर आया। वह

बहुत देवो से घिरा हुआ था। उसने सबसे पहले चारुदत्त को तीन प्रदक्षिणा से नमस्कार किया और उसके अनन्तर मुनिवर को। दोनो ही विद्याधर विशेष विस्मित हुए। उन्होंने देव से इस बारे मे स्पष्टता चाही। देव ने कहा—"यह श्रावक मेरा धर्माचार्य है। इसके अनुग्रह से ही मैंने यह ऋद्धि प्राप्त की है। मुनिवर से श्रावक को प्राथमिकता देने का यही कारण है।"

विद्याधरो ने पुन जिज्ञासा की—"यह तेरा धर्माचार्य कैसे बना ?" देव ने अपना पूर्व वृत्तान्त बतलाया। देव ने करबद्ध होकर चारुदत्त से भी कहा—"जिस बकरे को आपने धार्मिक सहयोग दिया था, वह मैं ही हू। आपके अनुग्रह से ही मुझे यह ऋद्धि प्राप्त हुई। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हू ?"

विद्याधरो ने देव से कहा—"आप निश्चिन्त रहे, इनकी सेवा का लाभ अब हम उठायेंगे। इन्हे अपने इच्छित स्थान पर पहुचा देंगे।" देव ने चारुदत्त की स्तवना की और नमस्कार कर देवलोक लौट गया। मुनिवर ने उनके समक्ष दिग्विरति व्रत की निरूपणा की। उसे सुनकर चारुदत्त बहुत हर्षित हुआ। उसने कहा—दिग्विरति-व्रत के अभाव मे ही मैंने ये कष्ट उठाये हैं। यदि यह व्रत मैं पहले ही ग्रहण कर लेता, तो इतने कष्टो

से वास्ता भी नही पड़ता । मै अपने शहर मे पहुंच कर इस व्रत को ग्रहण करूगा ।

तीनों ही मुनिवर को नमस्कार कर वहां से चले । विद्याधर चारुदत्त को अपने साथ वैताढ्य पर अपने घर ले गये । एक विद्याधर ने अपनी कन्या का विवाह चारुदत्त के साथ किया । चारुदत्त कुछ दिन तक सुख पूर्वक वहा रहा । एक दिन एक विद्याधर ने चारुदत्त से कहा—"मेरी एक कन्या है । निमित्तज्ञ ने मुझे वतलया, इसका पति द्वारिका का राजा श्रीकृष्ण होगा; अत आप इस कन्या को ले जाये और श्रीकृष्ण को भेट कर दे। चारुदत्त ने उसे स्वीकार कर लिया । विद्याधरो ने उसे विमान दिया । विद्याधर-कन्या व अपनी पत्नी के साथ वह द्वारिका आया । श्रीकृष्ण को पूर्व इतिहास वतलाकर कन्या समर्पित की । श्रीकृष्ण वहुत प्रसन्न हुए । उन्होने चारुदत्त का सम्मान किया और प्रचुर लक्ष्मी के साथ रहने के लिए भव्य आवास भी दिया ? चारुदत्त अपनी पूर्व पत्नी को भी वहा ले आया । दोनो पत्नियों के साथ वह आनन्दपूर्वक रहने लगा । दिग्विरति-व्रत उसने ग्रहरण किया और उसे आजीवन निरनिचार निभाया । अपना आयुप्य समाप्त कर वह देवलोक में गया ।

३

धर्म कुमार

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे कमल पुर नगर था। वहा सहस्राक्ष राजा राज्य करता था। राजा एक दिन राज-सभा मे बैठा था। एक नैमित्तिक आया। राजा को आशीर्वाद देकर वह एक ओर बैठ गया। राजा ने बात का आरम्भ किया। उसने पूछा—"निकट भविष्य मे क्या-क्या होने वाला है, विस्तार से बतलाओ।"

नैमित्तिक गम्भीर हो गया। राजा ने अपने प्रश्न को दूसरी बार भी दोहराया। नैमित्तिक ने कहा—"राजन्! बारह वर्षों का दुष्काल पडेगा। राज्य पर यह एक भारी संकट है। प्रजा बहुत पीडित होगी।"

राजा भी बहुत गम्भीर हो गया। उसने कहा—"इसका उपचार अभी से आरम्भ कर देना चाहिए।" मन्त्रियो से विमर्श किया गया। सर्व-सम्मति से यह निश्चय किया गया, मणि, रत्न आदि बहुमूल्य वस्तुओ के बराबर भी अनाज का विशेष संग्रह कर लेना चाहिए। राज्याधिकारी उस काम मे जुट पडे। बहुत

सारे नागरिक सकट से वचने के लिए देशान्तर चले गये और वहुत सारे समुद्री मार्ग से अन्य द्वीपो मे चले गये। राजा प्रभृति कुछ लोग वही रहे। उन्हे प्रतिक्षण चिन्ता कचोट रही थी। आषाढ मास का पहला दिन आया। पुरवैया हवा चली और पूर्व दिशा मे एक वादल उठा। उसे देखकर राजा को प्रसन्नता हुई। राजा ने कहा—यह बादल निश्चित ही शुभ सूचक है। राजा प्रभृति सभी नागरिक आकाश की ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। कुछ ही क्षणो मे आकाश काले-कजरारे बादलो से घिर गया। बादल गरजने लगे, बिजलियां चमकने लगी और मूसलाधार वर्षा होने लगी। देखते-देखते सारी पृथ्वी जल-मग्न हो गई। सभी नागरिक हर्षित होकर झूमने लगे और ताली देकर नैमित्तिक का उपहास करने लगे। वह वर्षा इतनी पर्याप्त थी कि एक ही बार मे अच्छी फसल हो गई। सभी नागरिक चिन्ता-मुक्त हो गये।

वनपाल ने आकर राजा से प्रार्थना की—आपके उद्यान मे युगधर मुनि चतुर्मास कर रहे है। चार ही महीने तक उन्होने आहार का प्रत्याख्यान रखा। ध्यान, मौन, कायोत्सर्ग आदि के माध्यम से उन्हे केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई है। राजा ने हर्षित होकर

३

धर्म कुमार

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे कमल पुर नगर था। वहा सहस्राक्ष राजा राज्य करता था। राजा एक दिन राज-सभा मे बैठा था। एक नैमित्तिक आया। राजा को आशीर्वाद देकर वह एक ओर बैठ गया। राजा ने बात का आरम्भ किया। उसने पूछा—"निकट भविष्य मे क्या-क्या होने वाला है, विस्तार से बतलाओ।"

नैमित्तिक गम्भीर हो गया। राजा ने अपने प्रश्न को दूसरी बार भी दोहराया। नैमित्तिक ने कहा—"राजन्! बारह वर्षों का दुष्काल पड़ेगा। राज्य पर यह एक भारी सकट है। प्रजा बहुत पीडित होगी।"

राजा भी बहुत गम्भीर हो गया। उसने कहा—"इसका बचाव अभी से आरम्भ कर देना चाहिए।" मन्त्रियो मे विमर्श किया गया। सब-सम्मति से यह निश्चय किया गया, मणि, कनक आदि बहुमूल्य वस्तुओ का बदला भी अनाज का विशेष सग्रह कर लेना चाहिए।" राज्याधिकारी उस काम मे जुट पड़े। बहुत

सारे नागरिक सकट से बचने के लिए देशान्तर चले गये और बहुत सारे समुद्री मार्ग से अन्य द्वीपों मे चले गये। राजा प्रभृति कुछ लोग वही रहे। उन्हे प्रतिक्षण चिन्ता कचोट रही थी। आषाढ मास का पहला दिन आया। पुरवैया हवा चली और पूर्व दिशा मे एक बादल उठा। उसे देखकर राजा को प्रसन्वता हुई। राजा ने कहा—यह बादल निश्चित ही शुभ सूचक है। राजा प्रभृति सभी नागरिक आकाश की ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। कुछ ही क्षणो मे आकाश काले-कजरारे बादलो से घिर गया। बादल गरजने लगे, बिजलियां चमकने लगी और मूसलाधार वर्षा होने लगी। देखते-देखते सारी पृथ्वी जल-मग्न हो गई। सभी नागरिक हर्षित होकर झूमने लगे और ताली देकर नैमित्तिक का उपहास करने लगे। वह वर्षा इतनी पर्याप्त थी कि एक ही बार मे अच्छी फसल हो गई। सभी नागरिक चिन्ता-मुक्त हो गये।

वनपाल ने आकर राजा से प्रार्थना की—आपके उद्यान मे युगधर मुनि चतुर्मास कर रहे है। चार ही महीने तक उन्होने आहार का प्रत्याख्यान रखा। ध्यान, मौन, कायोत्सर्ग आदि के माध्यम से उन्हे केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई है। राजा ने हर्षित होकर

३

धर्म कुमार

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कमल पुर नगर था। वहा सहस्राक्ष राजा राज्य करता था। राजा एक दिन राज-सभा में बैठा था। एक नैमित्तिक आया। राजा को आशीर्वाद देकर वह एक ओर बैठ गया। राजा न बात का आरम्भ किया। उसने पूछा—"निकट भविष्य में क्या-क्या होने वाला है, विस्तार से बतलाओ।"

नैमित्तिक गम्भीर हो गया। राजा ने अपने प्रश्न को दूसरी बार भी दोहराया। नैमित्तिक ने कहा—"राजन्! बारह वर्षों का दुष्काल पडेगा। राज्य पर यह एक भारी सकट है। प्रजा बहुत पीडित होगी।"

राजा भी बहुत गम्भीर हो गया। उसने कहा—"इसका बचाव अभी से आरम्भ कर देना चाहिए।" मन्त्रियो से विमर्श किया गया। सब-सम्मति से यह निश्चय किया गया, मणि, कनक आदि बहुमूल्य वस्तुओं को बेचकर भी अनाज का विशेष सग्रह कर लेना चाहिए।" राज्याधिकारी उस काम मे जुट पड़े। बहुत

सारे नागरिक सकट से बचने के लिए देशान्तर चले गये और बहुत सारे समुद्री मार्ग से अन्य द्वीपो में चले गये । राजा प्रभृति कुछ लोग वही रहे । उन्हे प्रतिक्षरण चिन्ता कचोट रही थी । आषाढ मास का पहला दिन आया। पुरवैया हवा चली और पूर्व दिशा मे एक बादल उठा । उसे देखकर राजा को प्रसन्नता हुई । राजा ने कहा—यह बादल निश्चित ही शुभसूचक है। राजा प्रभृति सभी नागरिक आकाश की ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। कुछ ही क्षरणो मे आकाश काले-कजरारे बादलो से घिर गया । बादल गरजने लगे, बिजलिया चमकने लगी और मूसलाधार वर्षा होने लगी। देखते-देखते सारी पृथ्वी जल-मग्न हो गई। सभी नागरिक हर्षित होकर झूमने लगे और ताली देकर नैमित्तिक का उपहास करने लगे । वह वर्षा इतनी पर्याप्त थी कि एक ही बार मे अच्छी फसल हो गई। सभी नागरिक चिन्ता-मुक्त हो गये ।

वनपाल ने आकर राजा से प्रार्थना की—आपके उद्यान में युगधर मुनि चतुर्मास कर रहे है । चार ही महीने तक उन्होने आहार का प्रत्याख्यान रखा । ध्यान, मौन, कायोत्सर्ग आदि के माध्यम से उन्हे केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई है। राजा ने हर्षित होकर



मुनिवर राजा को दुष्काल की विफलता का कारण बता रहे हैं।

अपने आभूषण वनपाल को प्रदान कर किये । राजा और नागरिक मुनिवर को नमस्कार करने के लिये आये । मुनिवर ने सबको धर्म-देशना से सन्तर्पित किया। राजा ने प्रश्न किया—"भन्ते ! नैमित्तिक का कथन असत्य प्रमाणित कैसे हुआ ?"

मुनिवर ने उत्तर दिया—"राजन् ! ग्रह-योग से तो बारह वर्ष का दुष्काल अवश्यम्भावी ही था । जिस कारण से यह विफल हुआ, नैमित्तिक उसे जान नही पाया ।"

राजा ने पुन प्रश्न किया—"भन्ते ! वह कारण भी मै सुनना चाहता हूँ ।"

मुनिवर ने कहा—"इसी भरत क्षेत्र मे पुरिमताल नगर है। वहा एक धनाढ्य युवक रहता था । वह कर्म-दोष से भयकर रोग से पीड़ित हुआ । ज्यो-ज्यो वह सरस आहार करता, त्यो-त्यो उसका रोग बढता ही जाता । एक दिन उसने इस प्रसग पर चिन्तन किया और गुरु के समक्ष दृढतापूर्वक घृत, मिष्टान्न, दुग्ध, दही आदि का प्रत्याख्यान कर दिया । प्रतिदिन वह रुक्ष-शुष्क भोजन करने लगा और उनोदरी तप भी करने लगा । पूर्ण रूपेण उसने अब्रह्मचर्य का भी प्रत्याख्यान कर दिया । व्रत का प्रभाव था, कुछ ही दिनो

में वह रोग-मुक्त हो गया। घर में सम्पत्ति भी प्रचुरता से बढने लगी। वह महर्द्धिक हो गया। उसके घर अनेक दासियाँ थीं। कुछ विशेष सुरूपा भी थीं। किन्तु, वह युवक वैराग्य में ही रमण करता रहता। उनकी ओर उसकी दृष्टि भी नही जाती। लक्ष्मी का उसने सदुपयोग किया। एक बार वहा दुर्भिक्ष पड़ा। अन्य वणिक् निर्धन हो गये। साधुओ के लिए आहार-उपलब्धि की कठिनता हो गई। उस युवक को जब इस परिस्थिति का पता चला, भक्ति-भाव से व कल्पनीय विधि से उसने साधुओ को दान देकर विशेष लाभ अर्जित किया। स्वजनो का भी उसने पोषण किया। समय पर आयुष्य समाप्त कर वह प्रथम देवलोक मे गया।

कितनी ही लम्बी अवधि क्यो न हो, एक दिन वह समाप्त होती ही है। वही देव वहा से च्यवकर सुबुद्धि श्रावक के घर धमवती के उदर से पुत्र-रूप में उत्पन्न हुआ है। उस पुण्यात्मा के जन्म के प्रभाव से वह बारह वर्ष का दुष्काल दूर हो गया है।

राजा वहा से सीधा सुबुद्धि श्रेष्ठी के घर आया। बालक को देखकर वह बहुत प्रभावित हुआ। मस्तक पर अंजलि धारण कर शुभ शब्दो से उसने बालक

को बधाया। मेरे ाज्य तू राजा है और मैं सेवक हूँ। निश्चित ही तू मूर्तिमान धर्म है, अत तेरा नात धर्म कुमार ही रखा जाता है। राजा अपने अवास को लौट आया।

धर्मकुमार शैशव को पार कर यौवन मे प्रविष्ट हुआ। सुबुद्धि ने कुलीन कन्याओ के साथ उसका विवाह किया। देवताओ के समान चिरकाल तक उसने सुखोपभोग किया और अन्त मे भागवती दीक्षा ग्रहण कर केवल ज्ञान प्राप्त किया।



४

सूरसेन और महसेन

क्षितिप्रतिष्ठित नगर में वीरसेन राजा राज्य करता था। रानी का नाम कमलावती था। दो पुत्र हुए, जिनका सूरसेन व महसेन नामकरण किया गया। वे बहुत सुरूप व सौभाग्यशाली थे और उनमें पारस्परिक स्नेह की पराकाष्ठा भी थी।

सुख में भी अनालोचित दुःख आ टपकता है। महसेन की जिह्वा पर एक व्रण हुआ। धीरे-धीरे वह बढ़ता गया। असह्य पीड़ा से वह कराह उठता। उसका क्रन्दन सुनते ही लोगों के दिल करुणा से भर जाते। अनेक उपचार किये गये, किन्तु, कुछ भी लाभ नहीं हुआ, प्रत्युत रोग बढ़ता ही गया। जीभ लोहे की तरह कड़ी हो गई। वैद्यों ने निराशा व्यक्त करते हुए राजा से कहा—अब तो धर्म की औषधि ही दी जानी चाहिए।

महसेन की जिह्वा उबले हुए क्वाथ के समान हो गई। उससे बहुत दुर्गन्ध उछलती थी। कोई भी उसके

पास बैठने नही पाता । माता-पिता त अन्य पारिवारिको के मन भी उसके प्रति घृणा से भर गये । कोई भी वस्तु अपेक्षित होती, तो किसी साधन से ही उसके पास पहुँचाई जाती । अग्रज सूरसेन ने ऐसी परिस्थिति मे भी उसका साथ नही छोडा । वह प्रतिक्षण उसके पास ही बैठा रहता । उसने अभिग्रह कर लिया—"जब तक मेरा भाई भोजन नही करेगा । मै भी भोजन नही करूगा । जो गति इसकी है, वही मेरी होगी ।" वह दिन-भर उसके पास बैठकर उसकी सेवा करता रहता ।

सूरसेन एक दिन महसेन के पास बैठा था । अचानक उसके मन मे चिन्तन उभरा, क्यो न नवकार मत्र का प्रयोग किया जाये । वह प्रासुक पानी ले आया । नवकार मंत्र के उच्चारण से उसे भावित किया । धीरे-धीरे उसे जीभ पर डाला । वेदना कुछ-कुछ शान्त हुई । सूरसेन ने यह नैरन्तरिक क्रम आरम्भकर दिया । क्रमश उसकी जीभ मे कोमलता लौट आई और दुर्गन्ध समाप्त हो गई । एक दिन वह पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया । राजा प्रभृति सभी व्यक्तियों को अपार प्रसन्नता हुई और उनकी धार्मिक श्रद्धा भी विशेप दृढ हुई ।



दोना भाइयो ने मुनिवर को अचेत अवस्था मे पाया और तत्काल उपचार म लग गये।

एक बार आचार्य भद्रबाहु का वहा शुभागमन हुआ । वे अवधिज्ञानी थे । सूरसेन व महसेन ने उनके दर्शन किये । आचार्य प्रवर ने धर्म-दर्शना दी । सूरसेन ने प्रश्न किया—"भगवन् ! मेरे अनुज को जीभ का असाध्य कष्ट सहन करना पडा । निश्चित ही इसने कोई क्रूर कर्म किया होगा । कृपया, मै यह जानना चाहता हूँ, वे कर्म क्या है ?"

आचार्य भद्रबाहु ने उत्तर दिया—"इसी भरत क्षेत्र मे मणिपुर नगर है । वहा मदन नामक एक सुभट रहता था । वह जैन धर्म मे प्रवीण था । उसके दो पुत्र थे । एक का नाम धीर और दूसरे का नाम वीर । दोनो पुत्र भी जैन धर्म के मर्मज्ञ थे । एक बार वे उद्यान मे गये । मार्ग मे एक मुनिवर बेहोश गिरे हुए थे । उन्हे देखते ही पास खडे व्यक्तियो से सारी घटना पूछी । उपस्थित व्यक्तियो ने बताया—मुनिवर कायोत्सर्ग मे लीन थे । एक सर्प इधर से आया और मुनिवर को डस कर बिल मे घुस गया ।

छोटा भाई वीर तत्काल ही बोल पडा—"उस सर्प को तुम लोगो ने मार क्यो नही डाला ?"

कठोर उक्ति का प्रतिकार करते हुए धीर ने कहा--"सर्प यदि अपने पुण्य-बल से बच निकला, तो तू ऐसे

शब्दो का प्रयोग कर पाप-कर्मो का बन्धन क्यो कर रहा है ?"

वीर ने पुन कहा—"बन्धुवर! वह सर्प अपराधी था, क्योंकि उसने मुनिवर को काट लिया था। ऐसे प्राणियो का तो वध ही उचित है। ऐसे अपराधियो के वध मे तो धम ही है, न कि अधम। दुष्टों का निग्रह और शिष्टो का रक्षण क्षत्रियो का धम है।"

वीर ने फिर उसे टोका, किन्तु, उसने अनर्थक वाक्यों को वापिस नही लिया। धीर ने मणि, मन्त्र और औषधि आदि के प्रयोग से मुनिवर को स्वस्थ कर दिया। दोनो ही भाइयो को इससे विशेष प्रसन्नता हुई।

सूरसेन! उस समय तू धीर था और महसेन वीर। अनथक कठोर वचनो के प्रयोग से महसेन को असाध्य कष्ट भोगना पडा और तूने नवकार मत्र के प्रयोग से उसे स्वस्थ कर दिया।

पूव जन्म का वृत्तान्त सुनते ही उन्हें जाति-स्मृति हुई। ससार के विनश्वर स्वरूप को जानकर उन्होंने उसे छोड दिया। दीक्षा ग्रहण कर शुभ भावों में रमण करते हुए दोनो ने ही पूर्वार्जित कर्मो का क्षय किया और निर्वाण को प्राप्त हुए।

५

केशरी

भरत क्षेत्र मे कामपुर नगर था। राजा विजयचन्द्र वहाँ का शासक था। इसी नगर मे एक धनाढ्य सेठ रहता था, जिसका नाम संघदत्त था। उसके पुत्र का नाम केशरी था। संघदत्त सौजन्य व परस्परोपग्रह के लिए आस-पास मे प्रसिद्ध था, तो केशरी चोरी मे। पिता ने उसे बहुत समझाया, पर, वह नही माना। सेठ ने एक दिन राजा को सारी स्थिति से अवगत किया और कहा—"मेरा उसके साथ कोई अनुबन्ध नही है। यदि वह चोरी करता है, तो आप भविष्य मे मुझे उपालम्भ न दे। आज से उस पर आपका दायित्व है।" राजा ने केशरी को बुलाया और लाल आँखे करते हुए देश छोड़ कर कही चले जाने का आदेश दिया। राजा ने उसे यह भी चेतावनी दी कि जहाँ कही भी और जब कभी भी मैं तुझे देखूगा, वही और उसी समय तुझे मार डालूँगा।

केशरी ने कामपुर को छोड़ दिया। जगलो मे भट-

कता हुआ वह एक सरोवर पर पहुचा। वहाँ उसने ठण्डा पानी पिया। उसका चिन्तन उभरा, आज का दिन मेरे लिए बहुत बुरा रहा, क्योंकि बिना चोरी किये ही मैंने पानी पिया। वह वहाँ इसी उधेडबुन में बैठा था। एक व्यक्ति आकाश से वहाँ उतरा। उसके पास एक दिव्य वस्तु थी। वह थी, पादुका। उसके प्रभाव से ही वह आकाश मे उडता था। आगन्तुक सज्जन ने पादुका एकान्त में छुपा कर रख दी और स्नान करने के लिए सरोवर में प्रविष्ट हो गया। केशरी चोर ने अपूव पादुका को रखते हुए देख लिया। अवसर देखकर उसने पादुका को चुरा लिया और आकाश-मार्ग से कही चला गया। इधर-उधर घूम कर उसने दिन व्यतीत किया और रात को अपने घर पर ही आया। पिता को पकड कर क्रूर शब्दों मे उसने कहा—"दुप्ट! राजा से कह कर तूने मुझे चोरी के अपराध मे घर से निकलवा दिया। तूने मेरे सिर पर यह भयकर कलक मढा है। अब इस का तुझे फल चखाता हूँ।" केशरी ने अपने पिता को पीटना आरम्भ किया। उसने उसे इतना अधिक और घातक रूप से पीटा कि पिता की वही मृत्यु हो गई।

केशरी चोरी का व्यसनी तो था ही और

पादुका उसे और मिल गई। करेले की बेल नीम पर चढ़ गई। जहाँ जी चाहता, वही चोरी करता। अब उसे रोकने वाला कौन था ? बड़े-बड़े सेठ-साहूकारो के घर को उजाडना उसने आरम्भ कर दिया। रात को बडी सफाई से वह काम करता और अन्तिम रात मे उसी जगल मे उसी सरोवर के समीप आकाश-मार्ग से आकर गुप्त स्थान मे छुप जाता। यह उसका नैरन्तरिक कार्य था।

चोर के उपद्रव से शहर मे कुहराम मच गया। सभी व्यक्ति अपने को असहाय-सा अनुभव करने लगे। एक दिन शहर के सभी प्रमुख नागरिको ने मिलकर राजा से निवेदन किया। राजा को इससे अपार वेदना हुई। उसने नगर-रक्षक को बुलाया। उसने उपस्थित हो कर निवेदन किया—"राजन् ! यह चोर अन्य चोरों से भिन्न है। आकाश-मार्ग से आता है और आकाश-मार्ग से ही चला जाता है। वह किसी भी प्रकार से पकड मे नही आता है। आप ही बताए, ऐसी स्थिति मे मै क्या कर सकता हूँ ?"

राजा विचार-मग्न हो गया। उस का चेहरा लाल हो गया, होठ धूजने लगे और अपने प्रति ही वह कहने लगा—"मेरी विद्यमानता में भी यदि चोर नही पकड़ा

जाता है, तो मै क्या राजा हूँ ? और क्या मैं प्रजा पालन का दम भरता हूँ ? राजा ने चोर को पकडने का दायित्व अपने पर लिया। कुछ विश्वस्त सैनिकों को साथ लेकर वह चल पडा। जगलो, पर्वत की गुफाओ व जीरण उद्यान आदि स्थानो का उसने चप्पा चप्पा छान लिया, पर, चोर का कही पता नही चला। एक दिन राजा मध्याह्न मे वन में विश्राम कर रहा था। सहसा उसे कर्पूर, कस्तूरी आदि की सुगन्ध ने आकृष्ट कर लिया। उसके मस्तिष्क मे प्रश्न पैदा हुआ, यह सुगन्ध कहा से आ रही है ? वह उसी क्षण उसी ओर चल पडा। कुछ दूरी पर चण्डिका देवी का मन्दिर था। वह उसमे घुस गया। ज्योंही उसकी दृष्टि चण्डिका की प्रतिमा पर पडी, उसने देखा, प्रतिमा कर्पूर, कस्तूरी आदि से अर्चित है। पास ही में एक पूजा करने वाला खडा है, जो दिव्य वस्त्र व आभूपणो से सज्जित है। राजा ने उससे पूछा—"देवी की यह अचना किसने की है और किसने तुझे दिव्य वस्त्र व आभूपण प्रदान किये है ?"

पूजक ने उत्तर दिया—"राजन्! मैं वणिक्-पुत्र हूँ। बहुत दु खी, दरिद्री व निधन हूँ। सुख व धन की अभिलापा से मैं प्रतिदिन देवी की आराधना करता हूँ। मेरी भक्ति से देवी प्रसन्न है। जब मैं प्रात काल पूजा के



बाये हाथ मे उसने पादुका ले ली और मन्दिर मे प्रविष्ट हुआ। राजा ने अपनी चातुरी से मन्दिर के कपाट बन्द कर दिये।

निकट आया। उसे भी सारी घटना ज्ञात हुई, वह चकित रह गया। सभी ने मिलकर केवलज्ञानी केशरी को नमस्कार किया व उनकी धम-देशना सुनी। राजा ने प्रश्न किया—"कहा आपके क्रूर अपराध और कहाँ केवलज्ञान ? यह सगति कैसे हुई ?"

केवलज्ञानी केशरी ने उत्तर दिया—"राजन्! यह ठीक है कि मैं आजन्म पाप मे रत रहा, किन्तु, प्रतिदिन एक शुद्ध सामायक भी किया करता था। उसी का परिणाम है कि मेरे कर्मों का निविड बन्धन नही हो पाया। बहुत वर्षो के तप-प्रभाव से जितने कम विलीन होते है, अल्पकालिक समता भाव से वे कम विलीन हो जाते है। केवलज्ञान की उपलब्धि में मेरे यही विशेष निमित्त बना है।

राजा अपने नगर लौट आया। केवल ज्ञानी केशरी पर विचरते हुए जीवों का उद्धार करने लगे।



अपने सैनिकों को उसका पीछा करने का निर्देश दिया। आगे-आगे केशरी दौड रहा था और उसके पीछे राजा के सैनिक ।

क्रूर-कर्मा व्यक्ति भी कई वार अपराध से ऊब जाता है, जब कि उसका भविष्य स्वर्णिम होता है। दौड़ता हुआ केशरी सोचने लगा, उग्र पाप के फल मैने इस जन्म में पा लिए है। आज मेरी मौत अवश्यम्भाविनी है। वह दौड़ता जा रहा था और मन मे चिन्तन कर रहा था। वन से उसे एक मुनि के शब्द सुनाई दिये—जो राग-द्वेप से मुक्त होकर शुभ ध्यान मे प्रवृत्ति करता है, वह क्षण-भर मे घोर पापो से भी मुक्त हो जाता है। वह वही ठहर गया। राग-द्वेप से उपरत होने का उसने उपक्रम आरम्भ किया। संसार की अनित्यता का चिन्तन उभरने लगा। शुभ भावो की श्रेणी वढने लगी। अपराध के कर्म एक-एक कर विलग होने लगे। उसकी आत्मा निखरने लगी। कुछ ही क्षणो मे उसे केवल ज्ञान की उपलब्धि हो गई। राजा भी चोर का पीछा करता हुआ आ रहा था। उसने आवाज लगाई, केशरी चोर को पकड़ो और मारो। सैनिक दौड़े और ज्यों ही वे निकट पहुँचे, देव-दुन्दुभि वज उठी। उन्हे ज्ञात हुआ, चोर केशरी केवलज्ञानी केशरी हो गया है। राजा भी

निकट आया। उसे भी सारी घटना ज्ञात हुई, वह चकित रह गया। सभी ने मिलकर केवलज्ञानी केशरी को नमस्कार किया व उनकी धर्म-देशना सुनी। राजा ने प्रश्न किया—"कहा आपके क्रूर अपराध और कहाँ केवलज्ञान ? यह सगति कैसे हुई ?"

केवलज्ञानी केशरी ने उत्तर दिया—"राजन्! यह ठीक है कि मै आजन्म पाप में रत रहा, किन्तु प्रतिदिन एक शुद्ध सामायक भी किया करता था। उसी का परिणाम है कि मेरे कर्मो का निविड बन्धन नही हो पाया। बहुत वर्षों के तप-प्रभाव से जितने कर्म विलीन होते है, अल्पकालिक समता भाव से वे कर्म विलीन हो जाते हैं। केवलज्ञान की उपलब्धि में मेरे वही विशेष निमित्त बना है।

राजा अपने नगर लौट आया। केवल ज्ञानी केशरी भूमण्डल पर विचरते हुए जीवो का उद्धार करने लगे।

६

सुमित्र मन्त्री

श्रीचन्द्र नगर मे तारापीड राजा राज्य करता था। मन्त्री का नाम सुमित्र था। वह जैन श्रावक था। उसकी श्रद्धा बहुत सुदृढ थी। वह प्रतिदिन सामायक, प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रियाए करता था। राजा को मन्त्री की धार्मिक क्रियाए उचित प्रतीत नही होती थी। उसने एक बार कहा—"सुमित्र! इन क्रियाओ के माध्यम से व्यर्थ ही तुम अपनी विडम्बना क्यो कर रहे हो? तप से शरीर को सुखा रहे हो, पर, इससे क्या हो रहा है? इन सब झझटो को छोड कर आनन्द-पूर्वक रहो।"

सुमित्र ने विनम्रता से निवेदन किया—"आपको तो हमारे कार्यो मे सहयोगी होना चाहिए। आपका विरोध असगत-सा लगता है। धार्मिक क्रियाओ से ही शुभ फल-प्राप्ति होती है।"

राजा ने प्रश्न किया—"सुमित्र! यदि तू मुझे धर्म के प्रत्यक्ष फल दिखला दे, तो मै स्वीकार कर

सकता हूँ, अन्यथा नही।"

सुमित्र ने कहा—"आप राजा बने, इतनी बडी सम्पत्ति के स्वामी बने, लाखो व्यक्ति आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं, यह सब धर्म का ही तो फल है ?"

राजा ने प्रतिवाद की भाषा मे कहा—"एक शिलाखण्ड के दो खण्ड किये गए। एक खण्ड सोपान मे काम आ गया और दूसरे खण्ड से प्रतिमा का निर्माण किया गया। क्या एक खण्ड ने पुण्य का अर्जन किया था और क्या दूसरे ने पापो का उपार्जन किया था ? इसी प्रकार कोई राजा होता है, कोई मन्त्री और कोई सेवक।"

सुमित्र ने कहा—"शिलाखण्ड का यह दृष्टान्त जीवन के लिए उचित नही है। शिला तो अनेक खण्डों में विभक्त हो सकती है, किन्तु, आत्मा इस प्रकार अनेक खण्डों में विभक्त नही हो सकती। प्रत्येक आत्मा की स्वतत्र सत्ता है, अत प्रत्येक की क्रिया भी स्वतत्र है और उसका फल भी स्वतत्र है। प्राणी के द्वारा धर्म-अधर्म की जैसी प्रवृत्ति होगी, उसी तरह शुभ-अशुभ परिणाम उसे भोगना होगा।"

राजा ने कहा—"जब तक मैं प्रत्यक्ष फल नही देख लूगा, तब तक धर्म की सत्ता स्वीकार नही करूगा।"

राजा और मन्त्री के बीच बहुधा यह विवाद

होता रहता। दोनों ही अपने विचारों में पक्के थे। एक दिन सुमित्र राज-कार्यों से निवृत्त होकर सूर्यास्त के बाद घर पहुंचा। उस दिन उसके चतुदर्शी का उपवास था। व्यस्तता के कारण वह पौषध नहीं कर सका। देशावकाशिक व्रत ग्रहण कर वह साधना मे लीन हो गया। प्रतिक्रमण के अनन्तर ध्यान व कायोत्सर्ग मे स्थित हो गया। राजा के समक्ष एक विशेष कार्य उपस्थित हुआ। उसने मन्त्री को बुलाने के लिए प्रतिहार को भेजा। उसने मन्त्री से निवेदन किया। मन्त्री ने उत्तर दिया —"सूर्योदय तक मैं घर से बाहर नही जा सकूगा। मै प्रत्याख्यान कर चुका हूँ। प्रतिहार ने लौट कर राजा को वस्तुस्थिति से अवगत किया। राजा के क्रोध का पार न रहा। प्रत्याख्यान का नाम सुनते ही उसने कडा आदेश देते हुए पुन कहा—"तू पुन जा। मन्त्री से कह दे, विशेष कार्य है, अत व्रत का खण्डन करके भी आना होगा। यदि नही आयेगा, तो मन्त्रि-मुद्रा सौप देनी होगी।" राजा ने प्रतिहार को निर्देश दिया—"यदि वह नही आये, तो तू उसकी मन्त्रि-मुद्रा ले आना।

सुमित्र की कडी परीक्षा का समय था। प्रतिहार ने मन्त्री को राजा का निर्देश सुना दिया। सुमित्र

सोचने लगा, व्रत का खण्डन करना महापाप है। मन्त्रि-पद बहुत बार पाया है और आगे भी पा सकता हूँ। मन्त्रि-पद की उपलब्धि दुर्लभ नही है। आत्म-दृष्टि के समक्ष मन्त्रि-मुद्रा नगण्य है। मुझे इससे क्या प्रयोजन है? वह अपने कायोत्सर्ग में लीन रहा। आगन्तुक प्रतिहार ने राजा के निर्देश को दूसरी बार व तीसरी बार भी दोहराया। सुमित्र पर उसका तनिक भी असर नही हुआ। प्रतिहार ने मन्त्रि-मुद्रा व सुमित्र के भव्य वस्त्र वहाँ से उठा लिए।

जब किसी का अनिष्ट होता है, तो उसका चिन्तन व प्रवृत्ति भी उसे उस ओर अनायास ले ही जाती है। प्रतिहार माग मे चलता हुआ सोचने लगा, मैं जीवन-भर प्रतिहार ही रहा। कितना सुन्दर हो, आज मन्त्री बन जाऊँ। चाहे यह कुछ समय के लिए ही क्यों न हो? इस का आनन्द तो लूटू। उसने भव्य वस्त्र पहन लिए, मन्त्रि-मुद्रा हाथ में ले ली और कुछ सेवको से घिरा माग मे चलता हुआ, वह बोलने लगा—"मैं मन्त्री हूँ, मैं मन्त्री हूँ।" मन्त्री शब्द कानों मे पडते ही छुप हुए कुछ सैनिक आगे आये और चिल्लाना आरम्भ किया—"मारो, मारो ?" सैनिको का दाव लग गया था, अत उन्होंने प्रतिहार को तत्काल

धराशायी बना दिया। उसके पास जो आभूपण व मन्त्रि-मुद्रा थी, वह भी उन्होने छीन ली। राजा को प्रतिहार की मृत्यु का जब यह उदन्त ज्ञात हुआ, आगबबूला हो उठा। उसका अनुमान था, यह हत्या सुमित्र की ईर्ष्या से हुई है। उस ने तलवार खीच ली और सुमित्र का सिर उतारने के अभिप्राय से वहाँ से चल पडा। मार्ग मे प्रतिहार को घेरे हुए कुछ सैनिक खडे थे। राजा भी वहा आ पहुँचा। विदेशी सुभटो को वहाँ देखकर राजा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उसने उनसे पूछा—"तुमने मेरे प्रतिहार को क्यों मारा ?"

सुभटो ने उत्तर दिया—"धारावास नगर मे सूरसेन राजा राज्य करता है। राजा सूरसेन से सुमित्र मन्त्री प्रतिवर्ष कर ग्रहण करता है। इस प्रकार वह हमे पीडित करता है। हमारे राजा के आदेश से हम उसे मारने के लिए यहा आये थे। हम छुपे हुए यहाँ खडे थे। आपका यह प्रतिहार "मै मन्त्री हूँ, मै मन्त्री हूँ" बोलता हुआ इधर से निकला। हमने इसे मन्त्री समझ कर धरती का पूत बना दिया। किन्तु, हमारे राजा के अभाग्य का उदय था, जिससे प्रयत्न सफल नही हुआ।

राजा तारापीड़ की तलवार म्यान से निकली



सैनिक आगे आये और चिल्लाना आरम्भ किया— 'मारो, मारो ?
सैनिकों का दाव लग गया था अत उन्होंने प्रतिहार को तत्काल
धराशायी कर दिया।

हुई थी। सारी घटना सुनते ही उसका खून खौलने लगा। एक-एक कर सभी सैनिको को उसने प्रेत्य-धाम पहुँचा दिया। राजा ने सारे वृत्तान्त पर चिन्तन किया। उसके मन मे आया, यदि आज सुमित्र धार्मिक कार्यो मे सलग्न न होता, तो निश्चित ही मारा जाता। मेरे निमत्रण पर राजमहलो मे आता और ये शत्रु-सैनिक उसे कभी नही छोडते। यह धर्म का प्रत्यक्ष फल है। राजा वहा से सुमित्र के घर गया। सुमित्र से उसने क्षमा-याचना की और कहा—"मैने धर्म का प्रत्यक्ष फल आज अनुभव कर लिया है। यदि आज तूने यह व्रत ग्रहण न किया होता, तो मेरी और राज्य की क्या स्थिति होती ? मै अपने आग्रह को वापस लेता हूँ।" राजा ने सुमित्र की धार्मिक प्रवृत्तियो की भूरिश प्रशंसा की और पुन मन्त्रि-मुद्रा समर्पित की।

सुमित्र ने उचित अवसर देखकर, राजा को धार्मिक उपदेश दिया। राजा उससे विशेष प्रभावित हुआ। राजा को आचार्य पूर्णचन्द्र का सुयोग मिला। उससे उसने श्रावक के व्रत ग्रहण किये। प्रतिदिन राज-सभा मे विभिन्न धार्मिक पहलुओ पर चर्चा होने लगी और राज-सभा धर्म-सभा मे बदल गई। समय-समय पर सुमित्र द्वारा प्रेरणा पाकर राजा के नाना

धार्मिक काय करता रहता। सुमित्र का प्रत्येक निवेद
राजा के लिये एक अनिवार्य कृत्य वन गया था।

राजा और सुमित्र, दोनों ने ही धर्म की सम्य
समाराधना की, जीवन को धर्म से भावित किय
और ससार-परिभ्रमिण के लगभग अन्तिम छोर त
पहुच गये। महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर वे निर्वाण
पद को प्राप्त करेंगे।



७

रणशूर

काचनपुर नगर मे रणशूर राजा राज्य करता था। रानी का नाम श्रीकान्ता था । राजा रणशूर रानी मे अत्यन्त आसक्त था अत धार्मिक क्रियाओ मे उसकी तनिक भी अभिरुचि नही थी । राजा एक दिन राज-सभा मे बैठा था। एक सैनिक आया। उसने कहा—"राजन् ! प्रतिक्षण विपयो मे ही फँसे रहना उचित नही है। धर्म के प्रति उदासीनता आत्म-दृष्टि से घातक है। मृत्यु से भी कतराना चाहिए। यदि तुम्हें अपने वल और सैनिको पर ही गर्व है, तो मेरे साथ युद्ध करो।"

कोई भी व्यक्ति चुनौती नही सह सकता। चुनौती सामने आते ही उसका पौरुप फडक उठता है। एक साधारण सैनिक ने, जव राजा रणशूर को ललकारा, तो वह आगवबूला हो उठा। उसने अपने सैनिको को आगन्तुक सैनिक के वध के लिए निर्देश दिया। सैनिक उसके पीछे दौड़े। समभूमि मे पहुचकर आगन्तुक

सैनिक ने अपना पौरुष दिखलाया। राजा के सभी सैनिक अपने बचाव के लिए चारों ओर दौड गये। वह सैनिक पुन राज-सभा मे आया। रोष मे लाल होकर उसने राजा के केश पकडे। वहा से उठाया और उसे एक सुदूरवर्ती जगल मे छोड दिया।

पराजित व्यक्ति को अपना पूर्व जीवन विशेष याद आता है। जगल मे बैठा हुआ राजा सोचने लगा, आगन्तुक सैनिक ने मेरी सैन्य-शक्ति को भग कर दिया और उसने मुझे भी इस भयानक जगल मे ला गिराया। कहाँ जाऊँ? किसके आगे पुकार करूँ? कहाँ मेरा समृद्ध नगर? कहाँ मेरा राज्य और कहाँ मेरी अतिशय वल्लभा श्रीकान्ता? दु ख किसे सुनाऊ? राजा अपने नाना प्रसगो पर अनुचिन्तन करता हुआ वन मे घूम रहा था।

किसी कार्य का परिणाम क्या होगा, यह बहुधा व्यक्ति के लिए अज्ञात ही होता है। वन मे घूमते हुए राजा ने आम्र वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ एक मुनि को देखा। वह उनके समीप आया। नमस्कार कर उनके समीप बैठ गया। ध्यान की सपूर्ति पर उन्होंने राजा से एक पहेली के रूप मे पूछा—"क्या, तेरा समाधान हो गया न?" राजा हार्द को नही पकड पाया, फिर भी



वन मे घूमते हुए राजा ने आम्र वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ एक मुनि को देखा। नमस्कार कर उनके समीप बैठ गया। ध्यान की सपूर्ति पर उन्होंने राजा से एक पहेली के रूप मे पूछा—"क्यो, तेरा समाधान हो गया न ?"

करने का अभिग्रह भी ग्रहण किया। अपने व्रतों की सम्यक् प्रकार से आराधना करता हुआ वह रह रहा था।

कभी-कभी अनालोचित घटना भी घटती है, जो जीवन को विशेष मोड देती है और व्रतो की कसौटी भी बन जाती है। राजा एक दिन महलों मे आया। रानी श्रीकान्ता उसे दिखाई नही दी। राजा चिन्तातुर हुआ। उसने अपने विश्वस्त चरो को खोज मे चारो ओर भेजा, पर श्रीकान्ता का पता नही चल पाया। चिन्ता-मग्न राजा ने एक दिन नैमित्तिक को बुलाया और उससे श्रीकान्ता के बारे मे प्रश्न किया। नैमित्तिक ने कहा—"राजन्! उत्तर दिशा में जाने पर वह तुम्हे ही प्राप्त होगी।" राजा ने उत्तर दिशा मे तत्काल प्रस्थान कर दिया। वह पाच दिन तक बिना कही रुके चलता रहा। जगल में धनजय यक्ष का चैत्य था। राजा ने विश्राम किया। उस दिन चतुर्दशी थी, अत राजा

मुनिवर ने उत्तर दिया—"पांचवे देवलोक मे रहने वाला अमृतप्रिय नामक एक देव है । वह यहां आया था । उसने मुझ से पूछा—"मेरे च्यवन के बाद मेरे विमान मे कौन उत्पन्न होगा ?" रणशूर ! मैंने उसे तेरा नाम बताया । तेरा नाम सुनते ही उसने कहा —"वह तो श्रीकान्ता पत्नी मे अत्यधिक आसक्त है । धर्म का नाम भी नही जानता है और न सुनने को भी उत्सुक है । ऐसी स्थिति में धार्मिक क्रियाएं वह कैसे करेगा और कैसे मेरे विमान में उत्पन्न होगा ?" मैंने पुन उसे उत्तर दिया—वह तेरे द्वारा यहा लाया जायेगा और मेरे पास धर्म सुनकर प्रतिबुद्ध होगा, धर्म स्वीकार करेगा । मेरे से यह सारा उदन्त सुनकर वह देवता तेरे पास गया । तुझे यहां लाने वाला, वह देव ही था ।"

राजा का मन आसक्ति से हटा । उसने मुनिवर द्वारा निरूपित धर्म-प्रज्ञप्ति को स्वीकार किया । सम्यक्त्व-सहित श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये । अमृतप्रिय देव भी वहा प्रकट हुआ । धर्म-स्वीकार के बारे में देव ने राजा को धन्यवाद दिया । देव राजा को कांचनपुर नगर ले आया । राज्य-सिंहासन पर स्थापित किया और वह अपने स्थान की ओर लौट गया । राजा रणशूर ने जीवन-पर्यन्त पर्व-तिथियों में पौषध व्रत ग्रहण

करने का अभिग्रह भी ग्रहण किया। अपने व्रतों की सम्यक् प्रकार से आराधना करता हुआ वह रह रहा था।

कभी-कभी अनालोचित घटना भी घटती है, जो जीवन को विशेष मोड देती है और व्रतो की कसौटी भी बन जाती है। राजा एक दिन महलो मे आया। रानी श्रीकान्ता उसे दिखाई नही दी। राजा चिन्तातुर हुआ। उसने अपने विश्वस्त चरो को खोज मे चारों ओर भेजा, पर श्रीकान्ता का पता नही चल पाया। चिन्तामग्न राजा ने एक दिन नैमित्तिक को बुलाया और उससे श्रीकान्ता के बारे मे प्रश्न किया। नैमित्तिक ने कहा—"राजन्! उत्तर दिशा मे जाने पर वह तुम्हें ही प्राप्त होगी।" राजा ने उत्तर दिशा मे तत्काल प्रस्थान कर दिया। वह पाच दिन तक बिना कही रुके चलता रहा। जगल मे धनजय यक्ष का चैत्य था। राजा ने वहा विश्राम किया। उस दिन चतुर्दशी थी, अत राजा ने पौषध ग्रहण कर ध्यान व मौन का अवलम्बन आरम्भ कर दिया।

धनजय यक्ष ने राजा के पौषध की निश्चलता की परीक्षा लेने की ठानी। उसने एक चर की विकुर्वणा की और उसे राजा के पास भेजा। चर ने राजा से कहा—

"राजन् ! आपकी सहधर्मिणी श्रीकान्ता को लिये इधर से कोई जा रहा है। आप शीघ्र ही उठे और रानी को उसके पजे से मुक्त करे।"

राजा की कसौटी का क्षण था। उसका चिन्तन उभरा, यदि व्रत की सुरक्षा रही, तो सब कुछ सुरक्षित है। यदि व्रत का लोप हुआ, तो जीवन ही वीरान हो जायेगा। फिर कौन रणशूर होगा और कौन श्रीकान्ता। वह पौषध में ही स्थित रहा। उसने चर की बात सुनी-अनसुनी कर दी और ध्यान में विशेष लीन हो गया। किन्तु, राजा की यह कड़ी कसौटी थी। यक्ष-विकुर्वित कृत्रिम श्रीकान्ता एक भयंकर पुरुष के साथ वहाँ आई और कारुणिक शब्दोमे राजा से कहने लगी—"नाथ ! पौषध व्रत को छोड कर इस दुष्टात्मा से मेरा उद्धार करे। यह मेरे पीछे लगा हुआ है और मुझे नाना यातनाए दे रहा है। बडी कठिनता से मै आपके पास पहुँच पाई हूँ। आप मेरे स्नेह को याद करे, अपना विरुद विचारे और मुझे उबारने का कष्ट करे। यदि इस समय मेरा सहयोग नही किया गया, तो न मालूम मेरी क्या गति होगी ? आप मेरी खोज में आये हैं और संयोगवश मैं आपके पास पहुच भी चुकी हू। **आप** मेरी ओर ध्यान दे। यदि आपने मेरी रक्षा की,

भी आपकी धार्मिक क्रियाओ मे सदा सहयोग करूगी। मुझे पूर्ण आशा है, आप अपनी अर्धागिना की इस प्रकार विडम्बना नही देख पायेंगे।"

राजा ध्यान में स्थिर रहा। उसका मन तनिक भी चलित नही हुआ। यक्ष ने अगला कदम उठाया। धूलि की वर्षा की। राजा रणशूर धूलि मे बुरी तरह सन गया, फिर भी नही उठा। यक्ष ने सर्प, बिच्छु और चीटियो की विकुवणा की। राजा,को बार-बार काटा, फिर भी उसका धैर्य नही डोला। यक्ष ने व्याघ्र, सिंह, हाथी आदि के माध्यम से भी राजा को नाना कष्ट दिये, किन्तु, उस पर उनका कोई असर नही हुआ। यक्ष को पराजित होना पडा। आसुरी शक्तियो पर आत्मीय शक्तियों की विजय हुई। यक्ष प्रकट हुआ। उसने राजा की धार्मिक दृढता की भूरि-भूरि प्रशसा की और कहा—"पौषध मे ऐसी दृढता रखने वाले विरल ही होते है?"

यक्ष ने सारी स्थितियो का रहस्योद्घाटन करते हुए कहा—'यहां कोई श्रीकान्ता नही थी। वताढ्य की दक्षिण श्रणी के गगन वल्लभ नगर के स्वमी विद्याधर द्वारा उसका अपहरण हुआ है। वहाँ वह विद्याधर श्रीकान्ता के सतीत्व की ज्यो ही विराधना करने लगा,

श्रीकान्ता ने उसे लाठी से पीटा। फलस्वरूप उसकी वहाँ मृत्यु हो गई। श्रीकान्ता अपने शील मे अखण्डित है।" यक्ष श्रीकान्ता को वहाँ से ले आया और राजा को समर्पित कर दी। यक्ष ने श्रीकान्ता के साथ राजा रणशूर को अपने नगर पहुँचा दिया। यक्ष ने मणि-माणिक्य व स्वर्ण आदि से राजा को विशेष सम्मानित किया।

राजा रणशूर धार्मिक क्रियाओं मे सलग्न हो गया। पर्व-तिथियो में उसने कभी पौषध नही छोडा। अन्तिम समय मे राजा ने अनशनपूर्वक प्राण-त्याग किया और पाँचवे देवलोक में उसी विमान मे उत्पन्न हुआ। वहां से वह महाविदेह मे उत्पन्न होगा और सब कर्मो का क्षय कर मुक्त होगा।



८

जिनदत्त

पोतनपुर मे जिनदत्त नामक महर्द्धिक व्यापारी रहता था। उसकी पत्नी का नाम पूर्णा था। जैन धर्म मे उसकी दृढ निष्ठा थी। जब कभी उसे दान का अवसर मिलता, उसे वह अपना विशेष सौभाग्य मानता था। एक बार एक आचार्य का शुभागमन हुआ। अन्य नागरिकों के साथ वह भी वन्दना करने व पर्युपासना करने गया। उपदेश से प्रभावित होकर उसने एकान्तर उपवास व दोनों समय प्रतिक्रमण करने का अभिग्रह ग्रहण किया।

लक्ष्मी बढती-घटती छाया के समान होती है। वह कभी इधर हो जाती है और कभी उधर। जिनदत्त निर्धन हो गया। रोटी के भी उसके लाले पड गये। काफी दिन ऐसे ही गुजारे। एक दिन पूर्णा ने उसे अपने पीहर जाने और वहाँ से कुछ धन लाने का आग्रह किया, जिससे व्यवसाय सुगमता से हो सके। जिनदत्त को यह प्रस्ताव उचित नही लगा। वह नही गया, किन्तु,

पत्नी का प्रतिदिन का आग्रह वह टाल भी नही सका। एक दिन जाने के लिए उसे प्रस्तुत होना ही पडा। पूर्णा ने पाथेय के लिए जिनदत्त को सत्तू प्रदान किया।

जिनदत्त अपने अभिग्रह में सजग था। एकान्तर तप चल रहा था। यात्रा मे भी उसने उसे नही छोडा। पहले दिन उसके उपवास था। वह चलता रहा। दूसरे दिन मध्याह्नोपरान्त वह एक ग्राम के समीप पहुँचा। वही एक सरोवर को पाल पर वृक्ष के नीचे बैठ कर उसने सत्तू को जल से भावित किया। हाथ-मुह धोने के अनन्तर जिनदत्त सोचने लगा, घर पर तो बहुधा साधु-साध्वियो का योग मिलता रहता था। यहाँ पर ऐसा योग कहाँ है ? यदि ऐसे समय पर सुपात्र-दान का योग मिले, तो क्या कहना ? उपवास का पारणा था, दिन की ढलती छाया थी, हाथ मे केवल पानी मे घोला हुआ सत्तू था और दान की बढती हुई भावना। जिनदत्त के भाग्य ने बल खाया। सयोगवश उसी मार्ग से एक मुनिवर का शुभागमन हुआ। मुनिवर का शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया था, क्योकि वे निरन्तर मासखमण तप किया करते थे। प्रतिदिन प्रथम प्रहर मे वे स्वाध्याय करते थे, दूसरे प्रहर मे ध्यान करते थे और तीसरे प्रहर मे पात्र आदि का प्रतिलेखन कर गोचरी के लिए जाते थे।

आज मुनिवर के भी पारणे का दिन था। मुनिवर को देख कर जिनदत्त पुलकित हो उठा। उसने मुनिवर को नमस्कार किया और आहार ग्रहण कर विशेष लाभ प्रदान करने का अनुरोध किया। मुनिवर ने उसे स्वीकार किया। जिनदत्त ने भी उत्कट परिणामो से आहार वहराया और विशेष पुण्य अर्जित किये।

चौथे दिन जिनदत्त अपने ससुराल पहुँचा। वहा पारणा किया। श्वसुर और जामाता का वार्तालाप आरम्भ हुआ। श्वशुर के पूछने पर जिनदत्त ने अपनी दयनीय आर्थिक स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया और व्यवसाय के लिए ऋण पर कुछ पूजी की याचना की। सम्पन्नता मे हर एक व्यक्ति अपने पारिवारिक को सहयोग प्रदान करता है, पर, विपन्नता मे सभी किनारा कम लेते है। श्वसुर व उसके सभी पारिवारिकों ने परामर्श किया। सभी एक ही निर्णय पर पहुचे—इन्हें दी गई रकम होम स्वाहा हो जायेगी। व्यवसाय के नाम पर घर का खर्च चलाने का यह तरीका है। दी गई पूंजी वापस नहीं आयेगी, अत कुछ भी नही देना ही उचित है।

सभी पारिवारिको ने कुलदेवी से पूछने का भी निर्णय किया। कुलदेवी ने भी परिवार के सदस्यों द्वारा



गठरी घर में ले गई। एकान्त में उसे खोला तो उसमें बहुमूल्य रत्न निकले। पूर्णा ने सोचा—मेरे पिता कितने दयालु हैं।

बाँध ली और सिर पर रख कर घर की ओर चल पड़ा।

पूर्णा को विशेष आशा थी अत उसने जिनदत्त को सिर पर गठरी लेकर आते हुए देखा, तो वह फूली नहीं समाई। उसने सामने आकर गठरी को अपने हाथो से उतारा और घर मे ले गई। एकान्त मे उसे खोला, तो उसमे बहुमूल्य रत्न निकले। पूर्णा ने सोचा मेरे पिता कितने दयालु है ? मेरी कारुणिक परिस्थिति से वे भी पिघल गये है। इतने बहुमूल्य रत्न उसी का परिणाम है। पूर्णा एक रत्न लेकर एक व्यापारी की दुकान पर गई। रत्न को बन्धक के रूप मे रख कर उसने भोजन-सामग्री खरीदी। घर आकर स्वादिष्ट भोजन तैयार किये और पति को अपने हाथो से परोसा।

चतुर व्यक्ति गरीबी के दिन जैसे-तैसे भी गुजार देता है, पर, ऋण के माध्यम से गुलछर्रे उडाना कभी नही चाहता। स्वादिष्ठ व नाना प्रकार के भोजन देखकर जिनदत्त ने पूर्णा से कहा—"कर्ज से की जाने वाली भक्ति अन्त मे दुःखद होती है और तू कर्ज करती जा रही है। मै इससे कैसे मुक्त होऊगा ?"

पूर्णा ने स्मित हास्य से कहा—"कर्ज किसने लिया है ? यह तो मेरी सूझ-बूझ का ही फल है। पिताजी ने जो आपको बहुमूल्य रत्न दिये थे, उनमे से

एक को गिरवी रख कर मैंने यह भोजन पकाया है। ऋण कतई नहीं लिया है।''

जिनदत्त उसी समय अन्दर गया। उसने गठरी को खोल कर देखा, तो वह अपनी आखो पर विश्वास नही कर सका। जिन्हे पत्थर समझ कर उसने गठरी में बान्धा था, दान के प्रभाव से सारे रत्न हो गये थे। उसने अपनी पत्नी से कहा

भोली मुद्ध म गव्वकरि, नवि दिन्न किंपि तुज्झ भायाए।
सत्तुयदाण पभवा, रयणमया कक्करा जाया ॥१॥

जो रत्न मुझे मिले है, वे तेरे पीहर के नही है। सत्तू के दान-प्रभाव से कंकर भी रत्न हो गये हैं।

जिनदत्त ने रत्नों को बाजार मे बेचा। करोडो की सम्पत्ति उसके पास हो गई। पति-पत्नी ने धार्मिक क्रियाओं मे वेग भरा। सुपात्र-दान में उनकी निष्ठा अत्यधिक गहरी हो गई। श्रावकत्व की सम्यक् आराधना करते हुए, उन्होंने देह-त्याग किया।

. ६ .

रत्नसार

रत्नविशाला नगरी मे समरसिंह राजा राज्य करता था। इसी नगरी में वसुसार श्रेष्ठी रहता था। उसके पुत्र का नाम रत्नसार था। रत्नसार एक दिन मित्रों के साथ उद्‌यान-यात्रा के लिए गया। आमोद-प्रमोद मे लीन रत्नसार को वही आचार्य विनयधर के दर्शन हुए। वह समीप आया, तीन प्रदक्षिणा की और नमस्कार के अनन्तर करबद्ध होकर आचार्यवर के उपपात में बैठ गया। उसने प्रश्न किया—"भगवन्! सुख-प्राप्ति का साधन क्या है?"

आचार्यवर विनयधर ने कहा—"सुख-प्राप्ति का अनन्य साधन सन्तोष है। सन्तोष के अभाव मे ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्र व चक्रवर्ती भी सुखी नही हो सकता और सन्तोष के सद्‌भाव मे भूमि पर शयन करने वाला व रूखा-सूखा भोजन करने वाला भी सुखी है। सन्तोष दो प्रकार का होता है, पूर्ण व यथासम्भव। गृह-त्यागी मुनि पूर्णत सन्तोषी होते है और गृहस्थ यथासम्भव।

प्रत्येक गृहस्थ को परिग्रह का परिमाण रखना चाहिए।"

रत्नसार आचार्य विनयधर के उपदेश से विशेष प्रभावित हुआ। उसने आचार्य से सम्यक्त्व ग्रहण की, श्रावक के व्रत ग्रहण किये और परिग्रह का परिमाण भी किया। उसने एक लाख रत्न, दश लाख मूल्य का स्वर्ण, आठ-आठ मूडे प्रमाण मोती और परवाल, आठ करोड स्वर्ण-मुद्राए, पाँच सौ मकान तथा दुकान के अतिरिक्त का त्याग किया। सौ वाहन, एक हजार घोडे, सौ हाथी, छ गोकुल से अधिक अपनी नेश्राय मे न रखने का व्रत ग्रहण किया। राज्य के अधिग्रहण का भी परित्याग किया।

एक दिन मित्र-मण्डली के साथ वह फिर उद्यान-यात्रा को चला। वहाँ उसने एक किन्नर-युगल को देखा। उसका मुख घोडे का और शरीर मनुष्य का। रत्नसार ने ऐसा न कभी देखा था और न कभी सुना ही था। वह उसे देखकर हसा। सहसा उसके मुख से कुछ शब्द निकल पडे। यदि यह युगल मनुष्य है तो इसका मुख अश्व की तरह कैसे है? ज्ञात होता है, यह मनुष्य नहीं है और न देव भी। किन्तु, अन्य द्वीप-प्रवासी कोई तिर्यञ्च है या किसी देव का वाहन है।

किन्नर युगल ने उत्तर दिया—"रत्नसार! तू अपने

दूपित विचारो से हमारी क्यो विडम्वना कर रहा है ? हम तो स्वेच्छाचारी व विलासी व्यन्तर है। हमारी दृष्टि म तो तू ही तिर्यञ्च है, जो कि पिता के द्वारा ठगा गया है।''

रत्नसार चकित हुआ और उसने प्रश्न किया-- "क्या मै पिता के द्वारा ठगा गया हू ?''

देव ने गम्भीरता से उत्तर दिया—"हा तू अपने पिता के द्वारा ठगा गया है। यदि ऐसा नही होता, तो तुझे अपने घर की विशेप वस्तुओं की जानकारी होती। तेरे पिता ने तेरे से कुछ वस्तुए छिपा रखी है।''

रत्नसार को इस कथन पर विश्वास नही हुआ। फिर भी उसने कहा—"कुछ वताओ तो सही, वह कौन-सी वस्तु है और कैसे मेरे से अज्ञात है।''

देव ने कहा—"तेरे पिता के पास एक विशेप अश्व है। वह किसी अन्य द्वीप से लाया गया है। वह नील वर्ण, कृश व अति चपल है। उसके कन्धे स्थूल है। वह अपने स्वामी की जय का सूचक है। वह वायु की तरह दौडता है और प्रतिदिन सौ योजन तक जा सकता है। सात दिन मे समस्त भू-मण्डल की परिक्रमा कर पुन. अपने स्थान पर आ सकता है। तुझे इस अश्व के वारे मे जानकारी है ? कैसे हो, वह घोडा एकान्त मे

छुपाया हुआ है। व्यर्थ ही तू मेरे पर दोष मढ रहा है, जब कि तू स्वय अपने पिता के द्वारा ठगा जा रहा है। मैं तुझे धीर और वीर उस दिन जानूंगा, जबकि तू उस घोडे को हस्तगत करेगा।"

किन्नर आकाश में अदृश्य हो गया। रत्नसार अपने घर लौट आया। उसके मस्तिष्क में एक ही विचार घूम रहा था, इस प्रकार का घोडा घर मे है और वह मेरे से अज्ञात ही रहा। वह एक कमरे मे गया और दरवाजे बन्द कर टूटी हुई चारपाई पर लेट गया। वसुसार को जब सारे वृत्तान्त की जानकारी हुई, तो वह दौडा हुआ आया। रत्नसार से उसने कारण पूछा। रत्नसार ने अपना हृदय खोलकर रख दिया। श्रेष्ठी वसुसार ने कहा—"मैं तेरे से कुछ भी छुपाना नही चाहता था, किन्तु, मैं तेरे वियोग को सह नही सकता। यदि इस अश्व के बारे में तुझे बता देता तो तू प्रतिदिन भ्रमण करता रहता। घर पर कभी नहीं ठहरता। तेरी अनुपस्थिति मेरे लिए अत्यन्त दुखद है। फिर भी मैं तुझे आज अश्व देता हू। तू यथेच्छ भ्रमण कर।"

अश्व पाकर रत्नसार विशेष हर्षित हुआ। अश्व पर सवार होकर मित्र-मण्डली के साथ शहर के बाहर आया। कुछ समय तक इधर-उधर घूमता रहा, किन्तु,

कुछ समय बाद घोडा पवन वेग हो गया।

वसुसार श्रेष्ठी के पास एक तोता था। वह विशेष प्रशिक्षित था। कुमार रत्नसार को पवन वेग से जाते हुए देखकर तोते ने कुमार के साथ जाने की सेठ से अनुमति मागी और कहा—"जहाँ कुमार प्रतिकूलताओं से घिर जायेगा, वहा मै उसका सहयोग करूँगा।" श्रेष्ठी ने तोते को कुमार के साथ जाने की सहर्ष अनुमति प्रदान कर दी। तोते को बडी प्रसन्नता हुई। वह पिजरे से उडा और बहुत शीघ्र ही कुमार के पास पहुंच गया। रत्नसार ने तोते को ज्यो ही देखा, प्रसन्नता के साथ उसका स्वागत किया और अपने उत्सग मे छोटे भाई की तरह बिठा लिया। रत्नसार के सभी मित्र अपने घर लौट आये।

निर्जन वन मे किसी व्यक्ति का मिलन और साथ ही उसके द्वारा हार्दिक आत्मीयता का प्रकटीकरण निश्चित ही अति आह्लाद का जनक होता है। अश्वारूढ रत्नसार तोते के साथ गहन जगल को लाँघता हुआ जा रहा था। उनकी दृष्टि एक तापसकुमार पर जा अटकी। तापसकुमार देवकुमार की तरह अत्यन्त सुरूप व सुकोमल था। वह एक झूले पर बैठा हुआ झूल रहा था। रत्नसार की आखो मे स्नेह की वृष्टि होने

लगी। तापस कुमार ने भी रत्नसार को देखा। वह भी उसके सौन्दय से मुग्ध हो उठा। स्नेह की वृष्टि करता हुआ, वह सोचने लगा, क्या यह मेरा अतिथि आ रहा है ? वह झूले से नीचे उतर आया। रत्नसार के समीप आकर उसने प्रश्नो की बौछार कर दी—"हे सत्पुरुष ! आप किस देश के निवासी है ? आपके नगर का क्या नाम है ? आपके कुल और जाति के बारे मे भी मेरी जिज्ञासा है। पिता, माता और परिवार के बारे मे भी मैं सविस्तार जानना चाहता हूं। आपके नाम के बारे मे तो मेरी विशेष उत्सुकता है। परिवार-रहित आपके यहाँ शुभागमन का निमित्त तो मेरी प्रश्नावलि का मुख्य अग ह ही। आप क्या चाहते ह ? क्या आज आप मेरे अतिथि बनकर मुझे कृतार्थ करेंगे ? आप घोडे से नीचे उतरे और उत्तर देते हुए आत्मीयता क लिय हाथ बढाये।'

रत्नसार घोडे से उतर कर ज्यो ही उत्तर देने को प्रस्तुत हुआ, तोता उसस पहले ही बोल पडा—"तापस कुमार ! कुलादि क प्रश्नो म तुम्हारा क्या अभिप्रेत फलित होगा ? हमन तुम्हारे साथ विवाह का प्रस्ताव नही रखा ह। हम तो तुम्हारे अतिथि है। यदि कुमार रत्नसार क प्रति तुम्हारी स्नेहिल भावना ह तो

अतिथि के योग्य स्वागत मे जुट जाओ।" तापस कुमार तोते के कथन से बहुत आनन्दित हुआ। उसने तत्काल ही एक पुष्पमाला तोते को पहना दी। तापस कुमार ने रत्नसार की ओर उन्मुख होकर कहा—"कुमार आप धन्य है, क्योकि ऐसा दक्ष तोता आपका मित्र है। आप मेरा आतिथ्य स्वीकार करे। मैं तापस हूँ, अत. आपके योग्य आतिथ्य तो नही कर पाऊँगा, तथापि अपनी शक्ति के अनुसार यत्किञ्चित् अवश्य करूँगा।"

तापस कुमार रत्नसार को अपने साथ वन-खण्ड मे ले गया। सरोवर मे उसे स्नान करवाया और पक्के व सुधा-सदृश मिष्ट द्राक्षा, आम, नालिकेर आदि नाना फल उपहृत किये। रत्नसार और तोते ने मनोहृत्य भोजन किया। तापस कुमार ने एला, लवग, कर्पूर आदि से भावित नागवल्ली के पान भी मुख-शुद्धि के लिए रत्नसार को भेट किये। घोडे के लिए भी घास व दाने की समुचित व्यवस्था की गई।

तोता, रत्नसार और तापस कुमार, तीनो ही एक स्थान पर बैठे आमोद-प्रमोद की बाते कर रहे थे। रत्नसार से सकेत पाकर तोते ने तापस कुमार से कहा —"मित्र! यौवन के नव उन्मेष के समय ही तुमने यह व्रत कैसे ग्रहण कर लिया? कहा यह लावण्य व

रिक कोमलता और कहाँ यह तुम्हारा दुष्कर व्रत ? महाभाग ! तुम्हारे चातुर्य व सौजन्य का तो यहाँ कुछ भी उपयोग नहीं है। मालती के फूल की तरह सब कुछ निष्फल हो रहा है। यह तुम्हारा शरीर तो दिव्य वस्त्र व आभूषणों से ही शोभित हो सकता है। इस कर्कश व कठोर वल्कल स्पर्श को तुम कैसे सहन करते हो ? यह कृष्ण कान्ति अतिकोमल केश-पाश जटा-बन्धन से शोभित नहीं होता। आश्चर्य है, इस उभरते यौवन के समय तुम्हें यह कैसे सूझी ?"

तापस कुमार की आँखें छलछला आई। गला रुँध गया। उसने आभार व्यक्त करते हुए कहा—"आत्मीयता के शब्द मुझे आह्लादित करने वाले है। आप दोनों ने मेरी कारुणिक स्थिति को जानने का प्रयत्न किया, यह मेरे लिए विशेष सुखद है। मैं अपना अनावृत्त जीवन-व्रत आपसे निवेदित करना चाहूँगा।"

रत्नसार और तोता दोनों ही सावधान होकर बैठ गए थे। तापसकुमार वार्ता का आरम्भ करने को प्रस्तुत हुआ। उसी समय एक झंझावात आया। दसों दिशाएं धूल से आच्छन्न हो गई। घोर गर्जन होने लगा। समीप बैठा हुआ व्यक्ति भी ओझल जैसा प्रतीत होने लगा। झंझावात ने तापसकुमार को अपनी लपट में

लिया और उड़ाकर न मालूम कहाँ ले गया। उड़ते हुए तापसकुमार ने रत्नसार से अपनी रक्षा की पुकार की। रत्नसार उसके सहयोग के लिए दौड़ा, किन्तु झंझा-वात की गति के साथ रत्नसार की गति का मेल नही बैठ पाया। तोते ने रत्नसार से कहा—"अब हमारे प्रयत्न व्यर्थ है। इतने समय मे तो वह झंझावात कुमार को लेकर लाख योजना दूर चला गया होगा। अब हमारे लिए पीछे लौटना ही श्रेयस्कर है।"

तोते के साथ रत्नसार वापस लौट आया, पर, उसके मन मे तापसकुमार ही समाया हुआ था। तोते ने कहा—"यह तापसकुमार पुरुष नही है। निश्चय ही यह स्त्री है। किसी देव, दानव या विद्याधर के द्वारा पुरुष बनाकर इसकी विडम्बना की जा रही है। मुखाकृति व गति से यह कन्या ही परिलक्षित होती है। यदि उसे किसी प्रकार मुक्त किया जा सके, तो निश्चय ही वह तुम्हारे साथ विवाह करेगी।"

तापसकुमार एक क्षण के लिए भी रत्नसार व तोते की स्मृति से ओझल नही हो पाता था। दोनो ही शीघ्र गति से चलते हुए एक वन-खण्ड मे पहुचे। वहाँ ऋषभनाथ भगवान् का एक मन्दिर था। रत्नसार घोड़े से उतर कर तोते के साथ मन्दिर मे आया,



कन्या कुमार के पास चली आई। कुमार ने उसका परिचय व व्यतिकर जानना चाहा। कन्या ने निःशंक भाव से अपना व्यतिकर सुनाना आरम्भ किया।

विधिपूर्वक भगवान की पर्युपासना की और मन्दिर की शोभा देखता हुआ एक गवाक्ष मे जा बैठा। रत्नसार ने तोते को सम्बोधित करते हुए तापसकुमार की चर्चा आरम्भ कर दी। उसने कहा—"इतने दिन बीत जाने पर भी उसका पता नही चला, यह कितने खेद की बात है।"

तोते ने तत्काल कहा—"खेद न करो! आज ही मधुर सम्मिलन हो जाएगा।

रत्नसार और तोते का वार्तालाप चल रहा था। उसी समय एक बाला उसी मन्दिर मे आई। भगवान् ऋषभनाथ की उसने पूजा की और तन्मय होकर भगवान् के समक्ष नृत्य भी करने लगी। कुमार और शुक उसे देखकर चमत्कृत हुए। आगन्तुक बाला ने भी रत्नसार को देखा। वह उससे विशेष आकर्षित हुई। वह कुमार के पास चली आई। कुमार ने परिचय व उसका व्यतिकर जानना चाहा—"कन्या ने नि शक भाव से अपना व्यतिकर सुनाना आरम्भ किया। उसने कहा —"कनकपुरी नामक एक नगरी है। कनकध्वज वहाँ का राजा है। रानी का नाम कुसुमश्री है। रानी कुसुमश्री रात को एक दिन सुख से सो रही थी। उसे स्वप्न मे दो मालाए अपने उत्सग मे आती हुई दिखाई दी। वह

राजा के समक्ष आई और उसे सारा स्वप्न-वृत्त सुनाया। राजा ने कहा—ज्ञात होता है कि अपने घर मे कन्या-युगल का अवतरण होगा।" रानी बहुत हर्षित हुई। समय पर रानी ने दो कन्याओ को जन्म दिया। अशोक मजरी और तिलकमजरी, दोनो का नाम रखा गया। क्रमश वे दोनों शैशव को पार कर यौवन मे प्रविष्ट हुई। वे सब कलाओ में निपुण हो गई। दोनो मे घनिष्ठ आत्मीयता थी। एक क्षण भी वे एक दूसरे से दूर नही रह पाती थी। जब दोनों सयानी हुई, राजा ने उनके वर के बारे में चिन्तन आरम्भ किया। राजा का विचार था, दोनो को यदि एक ही योग्य वर मिल जाए, तो सुन्दर हो।

एक बार वसन्त के अवसर पर वे दोनो बहिनें भी आमोद-प्रमोद के लिए उद्यान में गई। एक वृक्ष-शाखा पर उन्होंने झूला डाला। अशोक मजरी झूले मे बैठ गई और तिलकमजरी उसे झुलाने लगी। गगन-मार्ग से जाते हुए किसी विद्याधर ने अशोकमजरी का अपहरण कर लिया। उसने रक्षा के लिए आह्वान किया। सुभट उसके पीछे दौडे, किन्तु अशोकमजरी को बचाया नही जा सका। विद्याधर अशोकमजरी को लेकर आकाश मे अदृश्य हो गया। तिलकमजरी इस दृश्य को देखते ही बेहोश हो गई। शीतल उपचारों से

उसे स्वस्थ किया गया। राजा, रानी, तिलकमंजरी तथा अन्य नागरिक भी दु खित दिल से नगर मे लौट आए।

तिलकमंजरी शेष रात्रि में एक वार चक्रेश्वरी देवी के चैत्य में गई। भक्ति पूर्वक देवी की पूजा करने के बाद उसने कहा—"मेरी वहिन का शीघ्र ही पता चलना चाहिए, अन्यथा इस जीवन मे मै भोजन ग्रहण नहीं करूँगी। देवी तिलकमजरी की भक्ति से बहुत प्रसन्न हुई। उसने उसे सान्त्वना दी और खेद न करने व भोजन करने के लिए बाधित किया। देवी ने उसे कहा—एक महीने में तेरी बहिन का पता लग जायेगा और तुम्हारे साथ उसका मिलन भी हो जायेगा।"

तिलकमजरी ने पुन प्रश्न किया—"बहिन का सम्मिलन कैसे होगा और कहा होगा ?"

देवी ने उत्तर किया—"इस नगर की पश्चिम दिशा मे सुदूर प्रदेश मे एक गहन अरण्य है। वहा ऋषभनाथ भगवान् का चैत्य है। स्वर्ण-रत्नमय जिन-प्रतिमा है। वह प्रतिमा विशेष प्रभावशाली है। उसकी पूजा मे तुझे तत्पर होना चाहिए। वहीं पर निश्चित ही बहिन का सम्मिलन होगा। मेरा एक सेवक मयूर बनकर तुझे वहा प्रतिदिन ले जायेगा।"

तिलकमंजरी मैं ही हूं, ज्यों ही आगन्तुक बाला ने अपना परिचय दिया, आकाश से एक मयूर उतरा। उसकी ओर संकेत करते हुए तिलकमंजरी ने कहा—"इस पर चढकर ही मैं प्रतिदिन यहां आती हूँ। देव-पूजा करते हुए आज एक मास पूरा हो रहा है, किन्तु, बहिन का कहीं पता नहीं चला। महाभाग ! आप देश देशान्तर में भ्रमण करते रहते हैं। मेरे सदृश रूप व सदृश अवस्था की कन्या कहीं देखा हो, तो निर्देश करने का कष्ट करें।"

रत्नसार ने कहा—"कन्ये ! तेरे तुल्य कन्या तो मैंने कहीं नहीं देखी, पर एक अरण्य में एक तापसकुमार अवश्य देखा था।"

शुक ने कहा—"आज निश्चित ही तेरी बहिन का मिलन होगा।"

तिलकमंजरी की वाछें खिलने लगीं। उसने कहा—"यदि आज मुझे मेरी बहिन मिल जायेगी तो मैं तेरी पूजा करूँगी।"

पारस्परिक वार्तालाप चल ही रहा था, सहसा भयातुर व कम्पमान एक हंसी आकाश से उतरी और रत्नसार की गोद में बैठ गई। मनुष्य की भाषा में उसने कहा—"वीर पुरुष ! मैं आपकी शरण में हूँ।

मै दीन हू, असहाय हू और मेरा कोई त्राता नही है। आप मेरी रक्षा करे।''

रत्नसार के दिल मे दया उमड आई। उसने अपने हाथो से उसे सहलाते हुए आश्वासन दिया—''मराले! भय छोडो। जब तुम मेरी शरण मे आ गई हो, देव, दानव, मानव कोई भी तुझे पीडित नही कर सकता। मेरे हाथों से तुझे छीन लेना, किसो के भी वश की बात नही है।'' रत्नसार ने उसे ठण्डा पानी पिलाया और शान्त किया। हसी जब आश्वस्त हो गई, रत्नसार ने उससे पूछा—''तुम कौन हो? कहां से आई हो? मनुष्य-भाषा मे बाते कैसे कर लेती हो और तुझे किसका भय है? यदि मुझे परिस्थितियो की जानकारी हो सकेगी, तो मै उनका निवारण भी कर सकूगा।''

हसी आत्म-कथा सुनाने को प्रस्तुत हुई। उसी समय कोलाहल सुनाई पडा। चैत्य के बाहर आकाश से सैनिको के कुछ जत्थे उतरे। शुक चैत्य-द्वार पर आया। उसकी भौहे तन गई और आखे खून बरसाने लगी। सैनिको को फटकारते हुए उसने कहना आरम्भ किया—''सैनिको! क्या मार्ग भूल कर कही से आ रहे हो? क्या तुम्हे यह ज्ञात नही है कि यहा रत्नसार कुमार विराजमान है। उनके समक्ष देव, दानव व

यक्ष आदि भी पानी भरते है। यदि तुम्हारे पर कुमार की कोप-दृष्टि लग गई, तो पीछा छुडाना भी अत्यन्त कठिन हो जायेगा।"

तोते की ललकार ने सैनिकों के छक्के छुडा दिये। वे सोचने लगे—"निश्चित ही यह कोई देव या दानव है, अन्यथा विद्याधरो की अवहेलना नही कर सकता। कुमार का तोता भी यदि हम विद्याधरो को क्षुभित कर सकता है, तो न मालूम कुमार तो कैसा ही होगा? हमारा उसके समक्ष ठहर पाना, अत्यन्त कठिन हो जायेगा। अज्ञात शील के साथ युद्ध करना चातुरी नही हो सकती।"

सारे ही सैनिक वापिस लौट आये। अपने स्वामी के समक्ष सारी घटना प्रस्तुत की। विद्याधरो के राजा ने कडकते हुए व भृकुटि चढाते हुए कहा—"अरे! कमीनो! तुम्हे धिक्कार। मैं तो तुम्हारे पर फूला नही समा रहा था और तुमने इस प्रकार कायरता का परिचय दिया? एक तोते से इतना भय? कौनसा तोता और कौनसा कुमार? मेरे समक्ष सुर या असुर भी नही ठहर सकता। अब मेरा पराक्रम देखना। विद्याधर-प्रमुख ने दशमुख व चार भुजाए बनाई। एक हाथ मे खड्ग, दूसरे मे मेटक, तीसरे मे गदा और

चौथे मे धनुष ग्रहण किया । भयकर रूप बनाकर सिह की तरह गर्जन करते हुए मन्दिर की चारदीवारी मे उसने प्रवेश किया । शुक ने उसे देखा । वह डर कर कुमार के पास आ गया। विद्याधर-प्रमुख भी कुमार रत्नसार के समीप आया । ललकार के साथ उसने कहा—"रंक ! दूर हट, अन्यथा कही मुझे तेरी मृत्यु का पाप लगेगा । मेरी प्राण-वल्लभा हसी को तूने अपने उत्सग मे क्यो छुपा रखा है ? यदि तुझे अपना जीवन प्रिय है, तो यह हसी मुझे समर्पित कर दे, अन्यथा इस खड्ग से आज तेरा काम समाप्त कर दूगा।"

शुक, कन्या, मयूर और मराली, सभी भय से कांपने लगे । किन्तु, कुमार रत्नसार का साहस अडोल ही रहा। वह तनिक भी नही डरा। हँसते हुए उसने कहा—"रे मूढ ! मुझे तू क्या भय दिखा रहा है ? मैं तेरे वचन-प्रहार से घबराने वाला नही हूँ । शरणागता मराली को मै कभी तुझे नही दूँगा। इसे पाने का तुझे स्वप्न भी नही देखना चाहिए । मेरी आखो से ओझल हो जा, अन्यथा तेरे दशो मस्तको से दशो दिशाओ को बलि देने से मै नही चूकूगा।"

मयूर ने अपना वह स्वरूप छोडा और देव रूप बनाया । विविध शस्त्रो की विकुर्वणा करते हुए रत्न-

सार को ढाढस बन्धाया और कहा—"कुमार ! निशक होकर इसके साथ युद्ध करो। तुम अकेले हो, अत भय न खाना। तुम्हारी भुजायें और तुम्हारा पौरुष ही तुम्हें विजयी बनायेगा, पर, एक तुच्छ अनुचर के रूप मे मैं भी तुम्हारी सेवा मे प्रस्तुत हूँ। मैं तुम्हारे साथ रहकर शस्त्रो की पूर्ति करूगा और शत्रु-शक्ति चूर-चूर करता रहूँगा।"

रत्नसार का पौरुष दुगुना हो गया। उसने हसी तिलकमजरी को सौंप दी और स्वय घोडे पर सवार होकर विद्याधर-प्रमुख से लडने को प्रस्तुत हो गया। देव-प्रदत्त दिव्य धनुष हाथ मे लेकर टकारेव किया। सभी विद्याधर सैनिक अत्यन्त चमत्कृत हुए। एक ओर रत्नसार अकेला था और एक ओर सैकडों सैनिक। सभी ने मिलकर बाणो की वर्षा आरम्भ की, किन्तु, वे कुमार के एक रोम को भी पीडित नही कर सके। रत्नसार ने भी बाण-वर्षा आरम्भ की। उसका प्रत्येक बाण सनिको को व्यथित करने लगा। उससे बच पाना, उनके लिए अत्यन्त कठिन हो रहा था। कुछ समय तक व रण-भूमि मे डट रह, किन्तु, अन्तत एक-एक कर मैदान छोडकर भागने लगे। केवल एक विद्याधर-प्रमुख ही बचा रहा। वह भी रत्नसार के साथ लडने



एक ओर रत्नसार अकेला था और एक ओर सैकडों सैनिक। सबों ने मिलकर बाणों की वर्षा की, किन्तु, वे कुमार के एक रोम को भी पीडित नहीं कर सके। रत्नसार ने भी बाण वर्षा आरम्भ की। उसका प्रत्येक बाण सैनिकों को व्यथित करने लगा।

के लिए आया। विद्या-बल से उसने हजार भुजाएं बनाईं और सब भुजाओं से एक साथ बाण व नाना शस्त्र छोडने लगा। रत्नसार ने क्षुरप्र बाण से उसके सभी बाण व शस्त्र बीच ही में काट डाले। मौका पाकर रत्नसार ने एक शस्त्र ऐसा छोडा, जो उसकी छाती में लगा। रुधिर की धारा बह चली और मूर्च्छित होकर वह भूमि पर गिर पडा। कुछ ही क्षणों में वह सजग हुआ और बहुत सारे रूप बनाकर रत्नसार पर टूट पडा। चारों ओर से रत्नसार पर शस्त्र-प्रहार होने लगे। देव ने कुमार को संकट में घिरा जानकर मुद्गर उठा लिया और विद्याधर-प्रमुख पर झपटा। देव को सामने आते देख कर विद्याधर-प्रमुख क्षुब्ध हुआ। क्रुद्ध-देव ने मुद्गर का प्रहार उसके सीने पर कर ही डाला। बहुरूपिणी सारी विद्याएँ नष्ट हो गईं। विद्याधर प्रमुख ने जब यह सारी स्थिति देखी, तो अपने प्राण लेकर वह भी दौड पडा। सैनिक पहले से ही भाग चले थे। धर्म के प्रभाव से रत्नसार की विजय हुई और विद्याधर हारे।

देव के साथ रत्नसार चैत्य में आया। रत्नसार के अद्भुत शौर्य से तिलकमंजरी पुलकित हो उठी। उसने सोचा, निश्चित ही यह पुरुषरत्न है। कितना सुंदर

हो, यदि यह मुझे जीवन-साथी के रूप मे प्राप्त हो जाये। यदि ऐसा हो जाता है, तो बहिन का मिलन भी बडी सुगमता से हो सकता है, क्योकि यह कार्य पौरुष की अपेक्षा रखता है।

रत्नसार ने तिलकमजरी के पास से हसी को अपने हाथो मे ले लिया। वे प्रश्न अभी तक उसके मस्तिष्क मे चक्कर लगा रहे थे।

हसी ने कहना आरम्भ किया—"वैताढ्य पर्वत पर रथनूपुर नगर है। मदन वहाँ का विद्याधर-प्रमुख है और उसकी रानी का नाम कमला है। एक बार वह कनकपुर के उद्यान के ऊपर से जा रहा था। अशोकमजरी नामक एक राज-कन्या वहाँ झूल रही थी। उसे देखकर मदन कामासक्त हो गया और उस कन्या का उसने वही अपहरण कर लिया। अशोकमंजरी अत्यन्त करुण स्वर से रुदन करने लगी। मदन ने सान्त्वना देते हुए उससे कहा—"मै चोर नही हू। एक बहुत बडे देश का स्वामी हू। तुझे मेरे पास तनिक भी दु ख नही होगा। मैं तुम्हारा अनुचर बनकर रहूगा। अपनी सभी रानियो मे तुझे प्रमुख स्थान प्रदान करूगा।"

अशोकमंजरी उसकी दुश्चेष्टाओ पर क्रुद्ध हो रही थी। फिर भी उसने कुछ भी उत्तर नही दिया। **मदन**

के लिए आया। विद्या-बल से उसने हजार भुजाएं बनाई और सब भुजाओं से एक साथ बाण व नाना शस्त्र छोडने लगा। रत्नसार ने क्षुरप्र बाण से उसके सभी बाण व शस्त्र बीच ही में काट डाले। मौका पाकर रत्नसार ने एक शस्त्र ऐसा छोडा, जो उसकी छाती मे लगा। रुधिर की धारा बह चली और मूर्च्छित होकर वह भूमि पर गिर पडा। कुछ ही क्षणो में वह सजग हुआ और बहुत सारे रूप बनाकर रत्नसार पर टूट पड़ा। चारो ओर से रत्नसार पर शस्त्र-प्रहार होने लगे। देव ने कुमार को सकट मे घिरा जानकर मुद्गर उठा लिया और विद्याधर-प्रमुख पर झपटा। देव को सामने आते देख कर विद्याधर-प्रमुख क्षुब्ध हुआ। क्रुद्ध देव ने मुद्गर का प्रहार उसके सीने पर कर ही डाला। बहुरूपिणी सारी विद्याएँ नष्ट हो गई। विद्याधर प्रमुख ने जब यह सारी स्थिति देखी, तो अपने प्राण लेकर वह भी दौड पडा। सैनिक पहले से ही भाग चले थे। धर्म के प्रभाव से रत्नसार की विजय हुई और विद्याधर हारे।

देव के साथ रत्नसार चैत्य मे आया। रत्नसार के अद्भुत शौर्य से तिलकमजरी पुलकित हो उठी। उसने सोचा, निश्चित ही यह पुरुषरत्न है। कितना सुदर

हो, यदि यह मुझे जीवन-साथी के रूप मे प्राप्त हो जाये। यदि ऐसा हो जाता है, तो बहिन का मिलन भी बडी सुगमता से हो सकता है, क्योकि यह कार्य पौरुष की अपेक्षा रखता है।

रत्नसार ने तिलकमजरी के पास से हसी को अपने हाथो मे ले लिया। वे प्रश्न अभी तक उसके मस्तिष्क मे चक्कर लगा रहे थे।

हसी ने कहना आरम्भ किया—"वैताढ्य पर्वत पर रथनूपुर नगर है। मदन वहाँ का विद्याधर-प्रमुख है और उसकी रानी का नाम कमला है। एक बार वह कनकपुर के उद्यान के ऊपर से जा रहा था। अशोकमजरी नामक एक राज-कन्या वहाँ भूल रही थी। उसे देखकर मदन कामासक्त हो गया और उस कन्या का उसने वही अपहरण कर लिया! अशोकमंजरी अत्यन्त करुण स्वर से रुदन करने लगी। मदन ने सान्त्वना देते हुए उससे कहा—"मै चोर नही हू। एक बहुत बडे देश का स्वामी हू। तुझे मेरे पास तनिक भी दु ख नही होगा। मै तुम्हारा अनुचर बनकर रहूगा। अपनी सभी रानियो मे तुझे प्रमुख स्थान प्रदान करूंगा।"

अशोकमंजरी उसकी दुश्चेष्टाओं पर क्रुद्ध हो रही थी। फिर भी उसने कुछ भी उत्तर नही दिया। मदन

राज्य-सत्ता की प्राप्ति में ही निमित्त हो सकते है। किसी का स्नेह पाये विना, केवल अपने हठ पर डटे रहना, मूर्खता का ही लक्षण है।"

मदन विद्याधर कुपित हो गया। उसने कहा—"मेरे समक्ष मेरी ही निन्दा क्या यह मृत्यु को निमन्त्रण नही है ? मै निश्चित ही तुझे मारूंगा।"

अशोकमजरी ने तत्काल उत्तर दिया—"इस अनिष्ट सम्बन्ध से तो मृत्यु ही श्रेयस्कार है, अत मारने मे विलम्व क्यो किया जा रहा है ? यह कदम शीघ्र ही उठाओ। मुझे ऐसी दया की भीख नही चाहिए।"

मदन विद्याधर का हृदय वदला। उस पर अशोकमंजरी के विचारो का प्रभाव पड़ा। उसने तलवार को म्यान में डाल दिया। अशोकमंजरी को मराली वना दिया और उसे आश्वस्त कर एक स्वर्ण पिजरे में रखने लगा। कमला ने मराली को देखा, तो उसे संदेह हुआ। विद्या-वल से उसने मराली को सारा वृत्त पूछा। मराली ने चातुरीपूर्वक सारा उसे वृत्त कह सुनाया। कोई भी महिला अपनी सपत्नी को नही चाहती एक दिन अवसर देखकर कमला ने पिजरा खोल दिया। मराली तत्काल आकाश मे उड चली। जव वह उड़ती हुई, अतिशय थक गई तो विश्राम के लिए आपके उत्संग

में आकर बैठ गई । अशोकमजरी और तापसकुमार मैं ही हू । ज्यो ही उस विद्याधर को मेरे उडने का पता चला, वह यहा दौडा आया । मेरे पुण्य योग से आपने उसे युद्ध मे पराजित कर दिया ।"

तिलकमजरी ने जब वहिन की आत्म-कहानी सुनी, तो आखों से अश्रुधारा बह चली । उसके मुह मे सहसा शब्द निकल ही पडे—"तापस के रूप में भयानक अरण्य मे तू कैसे रही होगी ? अभी तिर्यञ्च के रूप मे कैसे रह रही है ? पूर्व भव मे तूने ऐसे क्या दुष्कर्म किये थे, जिससे तेरी यह दयनीय स्थिति हुई ? तेरा यह तिर्यक्-भाव कैसे दूर होगा ?"

देव पास ही मे था । उसने जब तिलकमजरी के कारुणिक शब्द सुने, तो उसका भी हृदय उमड आया । उसने मराली को पुन अशोकमजरी बना दिया । दोनो वहिनो का अभूतपूर्व मिलन हुआ । दोनो ओर मे ही गाढ आत्मीयता छलक पडी ।

रत्नसार ने विनोद में तिलकमजरी से कहा—"तुम दोनो वहिनो के सम्मिलन का मुख्य श्रेय तो मुझे है । बताओ, मुझे बधाई के रूप में क्या दोगी ?"

तिलकमजरी रत्नसार के उपकार से दबती-सी जा रही थी । उसने कहा—"आपके चरणों मे यदि सर्व-

स्व ही न्योछावर कर दिया जाये, स्वल्प ही है।"
तिलकमजरी ने अपने गले से एक बहुमूल्य हार निकाला और रत्नसार को पहना दिया। रत्नसार उसे स्वीकार करना नही चाहता था, पर, तिलकमजरी के अत्यधिक आग्रह को भी वह टाल न सका। कमल आदि पुष्पो से तिलकमजरी ने शुक की भी पूजा की।

देव ने कुमार से कहा—"चक्रेश्वरी देवी के द्वारा ये दोनो कन्याए बहुत पहले ही तुम्हे दो जा चुकी हैं। वर्तमान मे मैं इन्हे तुम्हे उपहृत करता हूँ। इनका वरण करो।" रत्नसार देव की प्रार्थना को टाल न सका। तीनो प्रणय-सूत्र मे आबद्ध हो गये। देव ने रूपान्तर से शीघ्र ही चक्रेश्वरी देवी को सारी घटना बतलाई। वह भी अतिशय प्रसन्न हुई, वहाँ आई और तीनो को विशेष आशीर्वाद प्रदान किया। चक्रेश्वरी के आदेश से उनके निवास के लिए एक सात मजिल का आवास बनाया गया। कनकध्वज राजा को भी इस प्रसग की सूचना दी गई। वह भी अपने परिवार के साथ वहा आया। कन्या, कुमार व शुक को देखकर सभी बहुत प्रसन्न हुए। कुमार ने देव के सहयोग से आगन्तुक व्यक्तियो का भोजन आदि से आतिथ्य किया। राजा कनकध्वज की इच्छा से रत्नसार अपने परिवार के साथ

कनकपुरी आया । उसके आगमन पर शहर को विशेष प्रकार से सजाया और सवारा गया । रत्नसार अपनी दोनो पत्नियों के साथ राज-महलो में रहने लगा । शुक के लिए स्वर्ण-पिंजरा बनाया गया । राज-महलों मे उसके लिए भी सभी प्रकार की विशेष व्यवस्थाए की गई ।

सुख मे दु ख का आगमन व्यक्ति को बहुत अखरता है । पर, ऐसा हुए बिना नहीं रहता । एक बार रात को रत्नसार सुख मे सो रहा था । एक दिव्य पुरुष हाथ मे तलवार लिए आया । लाल नेत्रों से रत्नसार को आह्वान करते हुए उसने कहा—' यदि तू वीर है, तो सावधान हो जा । मेरे साथ युद्ध कर । तेरा बल शृगाल के तुल्य है, अत सिह तुल्य मेरे जसे बलशाली के समक्ष क्या तू ठहर पायेगा ?''

रत्नसार ज्यो ही सज्ज होने लगा, आगन्तुक पुरुष शुक का पिंजरा लेकर दौड गया । रत्नसार उसके पीछे दौड पडा । नगी तलवार को वह पुन -पुन घुमाता हुआ जा रहा था । बहुत दूर तक रत्नसार ने उसका पीछा किया, किन्तु, वह पकडा न जा सका । वह आकाश में अदृश्य हो गया । रत्नसार सोचने लगा, निश्चित ही यह मेरा शत्रु है । सम्भव है, कोई देव हो, दानव हो

या विद्याधर भी हो। मेरे शुकराज को लेकर इस प्रकार दौड जाना, मेरी बहुत बड़ी क्षति है। शुकराज के बिना मेरी क्या गति होगी ? वह मुझे पुन कैसे प्राप्त हो सकेगा ?

रत्नसार ने साहस बटोरा। शुक की खोज मे वन के चप्पे-चप्पे को छान डाला। दिन-भर वह वन मे घूमता रहा। शुक नही मिला। सायंकाल वह एक नगर के समीप पहुँचा। नगर की शोभा दर्शनीय थी। किन्तु, ज्यो ही वह नगर-द्वार मे प्रविष्ट होने लगा, एक सारिका ने उसे प्रवेश न करने के लिए आग्रह किया।

कुमार रत्नसार के पाव ठिठक गये। उसने सारिका से निषेध करने का कारण जानना चाहा। सारिका ने सक्षेप मे कहा—"मैं तेरी सुख-समाधि के लिए ही ऐसा कह रही हू। बिना प्रयोजन ही तुझे रोकना मैं नही चाहती। यदि तू इसका कारण जानना ही चाहता है, तो बताने मे भी मुझे सकोच नही है। इस नगर का नाम रत्नपुर है। यहा पुरन्दर राजा राज्य करता था। उसके शासन-काल मे प्रजा थी। केवल एक बार उसे एक दु खद **स्थिति** सामना करना पडा। एक चोर प्रतिदिन **बहुर**

और चोरी करता। बडे-बडे सभी सेठ-साहूकारो को उसने निधन बना दिया। उसे पकडने के लिए भी अनेक प्रयत्न किये गये, किन्तु, वह पकड मे नही आया। चोर को पकडने के लिए एक दिन राजा स्वय निकला। रात में चोर का पीछा किया। चोर धन से भरी एक गठरी लिए जा रहा था। आगे-आगे चोर था और पीछे-पीछे राजा। चोर को अपने बचाव का एक उपाय सूझा। वह एक मठ मे घुस गया। तापस गहरी नींद मे सो रहा था। चोर ने गठरी उसके पास रख दी और स्वय नौ दो-ग्यारह हो गया। राजा ने तापस को ही चोर समझा और उसे उस अभियोग में रगे हाथों गिरफ्तार करवा लिया। प्रात -काल राज-सभा में उसे उपस्थित किया गया। राजा ने रोप के साथ आदेश दिया—इसका सिर मुण्डा जाये, रासभ पर बिठला कर नगर मे घुमाया जाये और अन्त मे शूलि पर चढ़ा दिया जाये। राजा का आदेश तत्काल क्रियान्वित हुआ। तापस मरकर राक्षस हुआ। उसने प्रतिशोध लिया। राजा को मार दिया। राक्षस के भय से सभी नागरिक सुरक्षित स्थानो पर चले गये हैं। अब भी यदि कोई राजा के अन्त पुर मे जाता है, तो राक्षस उसे धराशायी कर देता है। तुझे निषेध करने का मेरा

यही उद्देश्य है। मै तेरा कुशल-मंगल चाहती हूँ।"

साहसी व्यक्ति किसी से भी कतराता नहीं। मृत्यु उससे आंखमिचौनी ही करती है। रत्नसार ने सारिका से कहा—"मुझे उस राक्षस का तनिक भी भय नही है। वह मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा। उसे मेरे चरणो मे झुकना पड़ेगा।" रत्नसार ने उसी समय नगर मे प्रवेश कर दिया। शून्य नगर की दुकाने बहुमूल्य वस्तुओ से भरी पड़ी थी। कही चन्दन का ढेर लगा हुआ था, तो कही सोने का ढेर। कही सुपारिया पड़ी थी, तो कही नारियल। नगर-शोभा को देखता हुआ वह राज-महलो की सातवी मंजिल पर जा पहुचा। एक सुकोमल शय्या बिछी थी। वह निर्भीक उस पर लेट गया।

राजमहलो मे रात को यक्ष आया। एक मनुष्य को निर्भय लेटे देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसने सोचा, जिस स्थान पर आने का चिन्तन भी मनुष्य नही कर सकता, वहाँ आकर निर्भय सो जाना, इससे अधिक धृष्टता क्या हो सकती है? मुझे इसके प्राण-तन्तु तोड़ डालने चाहिए। पर किस प्रकार से? क्या फल को तोडने की तरह इसकी गर्दन को तोड डालना चाहिए? नखो से सारे शरीर को खरोच डालना चाहिये

या गदा से इसके अस्थि-समूह को चूर-चूर कर डालना चाहिए ? छुरी से जैसे ककडी छीली जाती है, क्या उस प्रकार से इसकी चमडी को छील डालना चाहिए ? जलती अग्नि मे इसे डालना चाहिए या गेंद की तरह इसे आकाश मे उछालना चाहिए या समुद्र मे फेंक देना चाहिए ? मृत्यु के नाना प्रकार उसके मस्तिष्क में उभर रहे थे। सहसा उसके मन मे आया, यह तो मेरे घर अतिथि के रूप मे आया है। क्या इसे देह-मुक्त करना शोभास्पद होगा ! घर पर आगत शत्रु भी अवध्य हो जाता है। जब तक यह न जगे, तब तक इसे कुछ भी नही कहना चाहिए। उसके बाद जैसा उचित होगा, करूगा। यक्ष राज-महल से बाहर आ गया। बहुत सारे पिशाचो को भी वहा एकत्र कर लिया। वह पुन राज-महल में लौट आया।

रत्नसार उसी प्रकार सुख से लेट रहा था। उसे देखते ही यक्ष की भौहे तन गईं। कडकते हुए उसने कहा—"अरे निलज्ज ! दूसरे के घर इस प्रकार लेटे रहना क्या शोभा देता है ? उठ शीघ्रता से चला जा, अन्यथा मेरे साथ युद्ध को उद्यत हो जा।" रत्नसार जगा तो उसने क्रुद्ध होकर यक्ष से कहा—"मेरी नीद मे तू विघ्न कैसे कर रहा है ? निन्द्रा-छेद करने वाला



राजमहलों में रात को यक्ष आया। एक मनुष्य को निर्भय लेटे देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसने सोचा जिस स्थान पर आने का चिन्तन भी मनुष्य नहीं कर सकता।

निन्द्रा-छेद ही पाता है । तू नये घृत से भावित शीतल जल से मेरे पद-नल का मदन कर, जिससे मुझे पुन नीद आ सके ।"

यक्ष ने सोचा, यह क्या मनुष्य है, जो मेरे से ही पद-तल का मदन चाहता है । निश्चित ही यह कोई दिव्य पुरुष है । इसका साहस और धैर्य भी कैसा है ? मुझे तो इसके आदेश का पालन करना ही होगा ? यक्ष ने सुरभित घृत से भावित पानी से मदन आरम्भ किया । यक्ष भी रत्नसार के समक्ष दास हो गया । धम के यथाथ पालन ने सब कुछ मन चाहा हो सकता है । यक्ष ने जब कुछ समय तक मदन किया, रत्नसार अपने आप उठ बैठा । उसने देव से कहा—"मनुष्य होकर मैंने तुझ जो आज्ञा प्रदान की, उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ । मैं तेरी भक्ति से सतुष्ट हू। वर माग । जो कोई दु साध्य काय होगा, वह मैं तेरे लिए करूगा ।"

यक्ष के आश्चर्य का पार नही रहा । देव से तो सभी वरदान मागते हैं और यह मनुष्य होकर भी देव को वरदान प्रदान करता है । इसके पास ऐसी कौनसी वस्तु हो सकती है, जो देवो के लिए प्राथनीय हो सकती है । फिर भी परीक्षा करनी चाहिए । यक्ष ने मधुर शब्दो मे कहा—"जो इच्छित प्रदान करता है,

ऐसा व्यक्ति तीन ही लोक मे दुर्लभ है । यदि तुम मेरी प्रार्थना को न ठुकराओ, तो मै कुछ याचना कर सकता हूँ।"

रत्नसार ने कहा—"योग्य कार्य का निर्देश करो। मैं कामना पूर्ण करूँगा।"

यक्ष ने कहा—"तो तुम इस नगर का राज्य ग्रहण करो। मैं तुम्हे योग्य समझ कर राज्य प्रदान करता हूँ। तुम आनन्द से राज्य-सम्पदा का उपभोग करो। मैं तुम्हारी सभी आवश्यकताओ को पूर्ण करूँगा और अनुचर की तरह सेवा मे तत्पर रहूँगा। सभी राजा तुम्हारे वशवर्ती होगे।"

रत्नसार धर्म-संकट मे फंस गया। वह सोचने लगा, यह यक्ष मुझे राज्य देता है और राज्य पुण्य से ही प्राप्त होता है, किन्तु, मैंने तो पहले से ही परिग्रह का परिमाण करते हुए राज्य का अधिग्रहण न करने का व्रत स्वीकार कर रखा है। साथ ही यक्ष को भी प्रार्थना-भग न करने का वचन भी दे चुका हू। क्या करना चाहिए ? व्रत-भंग इष्ट नही है। उसने साहस पूर्वक कहा—"दूसरी प्रार्थना करो। राज्य के लिए तो मैं पहले से ही नियमबद्ध हूँ, अत. मेरे लिए यह प्रश्न ही नही उठता। उस स्वर्ग मे क्या प्रयोजन,

णामो को भी भली भाति सोच लेना। मैं जब तक स्नेहिल हूं, तेरे लिए सब कुछ है। जब कुपित हो गया, सिर घुसाने को भी कही ठौर नही मिलेगी।"

रत्नसार मौन रहा। यक्ष के विचारो को वह क्रियान्वित कर नही सकता था, अत उस समय उसका बोलना व्यर्थ ही प्रमाणित होता। रत्नसार को मौन देखकर यक्ष खौलने लगा। उसने दूसरी बार व तीसरी बार भी धमकी दी, किन्तु, रत्नसार अपना व्रत तोड़ने को प्रस्तुत नही हुआ। यक्ष ने रत्नसार को केशों से पकड़ा और आकाश मे उछाल दिया। गिरते हुए रत्नसार को यक्ष ने अपने हाथो मे दबोच लिया। अपनी भावना को पुन दुहराते हुए यक्ष ने कहा—"अपने दुराग्रह से मृत्यु का अतिथि न बन। आती हुई राज्य-लक्ष्मी को ठुकराना बुद्धिमानी नही है। मैंने तेरे द्वारा निर्दशित कर्मकर-योग्य कार्य भी किये और तू मेरे द्वारा निर्दशित सम्माननीय कार्य भी नही करेगा?" यक्ष ने भय दिखाते हुए कहा—"अब तक तो मैंने तुझे बचाया है, क्यो कि तेरे प्रति मेरे हृदय मे आत्मीयता है। जब कि तू मुझे कुछ भी नही समझ रहा है, प्रति-शोध लिये बिना रहने वाला नही हूं। मैंने निर्णय किया है, इस बड़ी शिला पर जैसे धोबी वस्त्रो को पछाड़ता

है, मैं तुझे पछाड़ूगा। दुख मे ही तेरी मृत्यु होगी। और तू नरक-गामी होगा।"

यक्ष केवल कहने तक ही सीमित नही रहा। वह रत्नसार को शिला तक ले आया। रत्नसार को उसने पुन सजग किया, किन्तु, रत्नसार किसी भी परिस्थिति मे उसे स्वीकार करने को प्रस्तुत नही था। उसने भी अपनी दृढता व्यक्त करते हुए कह दिया—"जो तुझे करना हो कर ले। रत्नसार अपना व्रत तोडने को प्रस्तुत नही है और नही होगा। मैं प्रलोभन और भय, दोनो से ऊपर उठ चुका हूँ। कोई भी शक्ति मुझे विचलित नही कर सकती।"

देवी शक्तियो के समक्ष आत्मीय शक्तियो की विजय सदैव होती रही है। रत्नसार के समक्ष यक्ष को पराजित होना पड़ा। उसने यक्ष के रूप का परित्याग किया और दिव्य देव के रूप में वह प्रस्तुत हुआ। रत्नसार पर उसने फूलो की वर्षा की और जय-जय शब्दों से उसे बधाया। देव ने उसकी प्रशस्ति में कहा—"पौरुष-सम्पन्न व्यक्तियो मे तुम अग्रणी हो। तुम्हारे जैसे पुरुष-रत्नो स ही यह पृथ्वी रत्नगर्भा कही जाती है। तुम्हारी धार्मिक दृढता को देखकर मैं चकित रह गया हूँ।"

यक्ष ने रहस्योद्‌घाटन करते हुए कहा—एक बार सौधर्म और ईशान देवलोक में नये इन्द्र उत्पन्न हुए। सौधर्म देवलोक मे बत्तीस लाख विमान है और ईशान देवलोक मे अट्ठाईस लाख विमान हैं। फिर भी एक विमान को लेकर दोनो इन्द्रो मे युद्ध ठन गया। मनुष्यों का झगड़ा मनुष्यों द्वारा निपटाया जा सकता है, देवो का कलह देवो द्वारा शान्त किया जा सकता है, किन्तु, इन्द्रो का विग्रह कौन मिटा सकता है? वृद्ध देवो ने एक बार प्रस्ताव रखा माणवक स्तम्भ मे जिनेश्वर देव की दाढ़े है। पानी में उन्हें घोलकर स्नान किये जाने पर महावैर भी शान्त हो जाते है। स्नाधिक देवो ने उस प्रस्ताव को क्रियान्वित किया। उस जल से दोनो इन्द्रों का अभिषेक किया। दोनों का ही मात्सर्य-भाव जाता रहा और वे प्रीति-भाव मे संलग्न हो गये।

एक बार चन्द्रशेखर देव ने हरिणेगमेषी देव से पूछा—"क्या मर्त्य लोक मे भी कोई व्यक्ति सर्वथा लोभ-मुक्त है?" हरिणेगमेषी देव ने कहा—वसुसार श्रेष्ठी का कुमार रत्नसार सर्वथा निस्पृह है। वह देवो द्वारा प्रदत्त राज्य की भी आकाक्षा नही करता। चन्द्रशेखर के हृदय मे यह बात नही जँची। परीक्षा

के उद्देश्य से वह यहाँ आया। उसने ही यक्ष का रूप बनाया था। मै ही वह चन्द्रशेखर हूँ। मैंने तुम्हें नाना प्रकार से पीडित किया, इसका मुझे दु ख है। यह मेरा अपराध हुआ है, मुझे क्षमा प्रदान करो। तुम्हारे आत्म-बल से मैं विशेष प्रभावित हुआ हूँ। वरदान माँगो। देव दशन कभी निष्फल नहीं होते।

रत्नसार ने पुन निस्पृहता से उत्तर दिया—"धम के प्रसाद से मेरे लिए सब कुछ है। किसी प्रकार की न्यूनता नही है। यदि तुम कुछ चाहते ही हो, तो स्वय धम-प्रवीण बनो।" देव रत्नसार के विचारो स बहुत प्रभावित हुआ। उसने रत्नसार को शुक के साथ कनकपुरी पहुँचा दिया। वहाँ भी राजा के समक्ष देव ने रत्नसार की धार्मिक भावना की भूरि-भूरि प्रशसा की। रत्नसार को बहुमान देकर वह अपने स्थान लौट आया।

विशाला मे प्रस्थान किये रत्नसार को बहुत समय हो चुका था। उसे अपने माता-पिता पारिवारिकों व मित्र-मण्डली की याद सताने लगी। राजा कनकध्वज मे अनुमति ली और दोनो पत्नियो (अशोकमजरी व तिलकमजरी) के साथ अपन नगर की ओर प्रस्थान कर दिया। माग मे विभिन्न राजाओ द्वारा सत्कृत

होता हुआ अपने दल के साथ वह विशाला पहुंचा। उसके समृद्धिशाली दल को देखकर राजा समरसिह भी स्वागत मे आया। वसुसार प्रभृति अनेक इभ्य जनो ने भी रत्नसार का हार्दिक स्वागत किया। विशेष महोत्सव के साथ सभी उसे शहर मे ले गये। शुक ने सबके समक्ष रत्नसार का घटना वृत्त प्रस्तुत किया। सभी श्रोता विस्मित हुए और रत्नसार के पौरुष का व्याख्यान करने लगे। रत्नसार अपने पारिवारिको के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

एक बार नगर-उद्यान मे धर्मसूरि का शुभागमन हुआ। वे चार ज्ञान से सम्पन्न थे। राजा समरसिह रत्नसार आदि आचार्य की पर्युपासना के लिए उद्यान मे आये। देशना के अनन्तर राजा ने रत्नसार का पूर्व-भव जानना चाहा। उसका प्रश्न था, रत्नसार ने अपने पिछले जन्म मे ऐसा क्या सुकृत किया था, जिससे उसे यहाँ ऐसी समृद्धि प्राप्त हुई।

आचार्य प्रवर ने रत्नसार के पूर्व भव का विस्तृत वृत्त सुनाया, जिससे राजा प्रभृति सभी उपस्थित श्रोता विशेष प्रभावित हुए। सभी का मन धर्म मे अनुरंजित हुआ। रत्नसार ने भी अपना समय धार्मिक कार्यों मे ही अनुयो-जित किया। उसके संसर्ग से उसकी दोनो पत्नियाँ भी

के उद्देश्य से वह यहा आया। उसने ही यक्ष का रूप वनाया था। मैं ही वह चन्द्रशेखर हूं। मैंने तुम्हें नाना प्रकार से पीडित किया, इसका मुझे दु ख है। यह मेरा अपराध हुआ है, मुझे क्षमा प्रदान करो। तुम्हारे आत्म-वल से मैं विशेष प्रभावित हुआ हूँ। वरदान मांगो। देव-दर्शन कभी निष्फल नही होते।

रत्नसार ने पुन निस्पृहता से उत्तर दिया—"धर्म के प्रसाद से मेरे लिए सव कुछ है। किसी प्रकार की न्यूनता नही है। यदि तुम कुछ चाहते ही हो, तो स्वय धर्म-प्रवीण वनो।" देव रत्नसार के विचारों से वहुत प्रभावित हुआ। उसने रत्नसार को शुक के साथ कनकपुरी पहुँचा दिया। वहाँ भी राजा के समक्ष देव ने रत्नसार की धार्मिक भावना की भूरि-भूरि प्रशसा की। रत्नसार को वहुमान देकर वह अपने स्थान लौट आया।

विशाला से प्रस्थान किये रत्नसार को वहुत समय हो चुका था। उसे अपने माता-पिता पारिवारिकों व मित्र-मण्डली की याद सताने लगी। राजा कनकध्वज से अनुमति ली और दोनों पत्नियो (अशोकमजरी व तिलकमजरी) के साथ अपने नगर की ओर प्रस्थान कर दिया। मार्ग मे विभिन्न राजाओ द्वारा सत्कृत

होता हुआ अपने दल के साथ वह विशाला पहुंचा। उसके समृद्धिशाली दल को देखकर राजा समरसिंह भी स्वागत मे आया। वसुसार प्रभृति अनेक इभ्य जनो ने भी रत्नसार का हार्दिक स्वागत किया। विशेष महोत्सव के साथ सभी उसे शहर मे ले गये। शुक ने सबके समक्ष रत्नसार का घटना वृत्त प्रस्तुत किया। सभी श्रोता विस्मित हुए और रत्नसार के पौरुष का व्याख्यान करने लगे। रत्नसार अपने पारिवारिकों के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

एक बार नगर-उद्यान मे धर्मसूरि का शुभागमन हुआ। वे चार ज्ञान से सम्पन्न थे। राजा समरसिंह रत्नसार आदि आचार्य की पर्युपासना के लिए उद्यान मे आये। देशना के अनन्तर राजा ने रत्नसार का पूर्व-भव जानना चाहा। उसका प्रश्न था, रत्नसार ने अपने पिछले जन्म मे ऐसा क्या सुकृत किया था, जिससे उसे यहाँ ऐसी समृद्धि प्राप्त हुई।

आचार्य प्रवर ने रत्नसार के पूर्व भव का विस्तृत वृत्त सुनाया, जिससे राजा प्रभृति सभी उपस्थित श्रोता विशेष प्रभावित हुए। सभी का मन धर्म से अनुरजित हुआ। रत्नसार ने भी अपना समय धार्मिक कार्यो मे ही अनुयोजित किया। उसके ससर्ग से उसकी दोनो पत्नियाँ भी

विशेष धर्म-परायण हुई। रत्नसार अपना आयुष्य शेषकर अच्युतकल्प मे देव हुआ। महाविदेह मे जन्म ग्रहण कर वह मोक्ष मे जायेगा।

रत्नसार जातक

भरत क्षेत्र मे राजपुर नगर था। वहाँ जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसके कुमार का नाम श्रीसार था। श्रीसार के तीन अन्य मित्र भी थे (१) क्षत्रिय पुत्र, (२) अमात्य-पुत्र, (३) श्रेष्ठि-पुत्र। चारो मे ही गहरी आत्मीयता थी। एक बार रानी के महलों मे चोरी हुई। चोर बहुत सारा धन लेकर भाग गया, किन्तु, कोतवाल के द्वारा वह रँगे हाथो पकडा गया। चोर प्रात काल राजा के समक्ष प्रस्तुत किया गया। राजा ने उसे मृत्यु-दण्ड दिया। कोतवाल उसे वध्य-भूमि की ओर ले जा रहा था। मार्ग मे उसे राजकुमार श्रीसार मिला। श्रीसार ने कोतवाल से चोर की सारी वस्तुस्थिति का पता लगाया। उसका हृदय करुणा से भर आया। श्रीसार ने कहा—"इसने मेरी माता के महलो मे चोरी की है, अत. इसे दण्ड भी मै अपने हाथो से दूगा।" कुमार ने चोर को अपने अधिकार मे ले लिया। वह उसे लेकर शहर से बाहर आया। चोर के

हृदय मे चोर- वृत्ति से घृणा उत्पन्न की। कुमार के उपदेश से उसने जीवन-पर्यन्त चोरी न करने का व्रत ग्रहण कर लिया। राजकुमार ने उसे छोड दिया।

राजकुमार के विरोधियों को इस घटना का सुराग मिल गया। उन्होने राजा के कान भर दिये। राजा आग बबूला हो उठा। राजकुमार को अपने पास बुलाकर राजा ने उसकी तीव्र भर्त्सना की और नगर-निवासन का आदेश प्रदान कर दिया। राजकुमार ने शहर का त्याग कर दिया। तीनो मित्र भी राजकुमार के साथ हो गए। चारो ही प्राणी निर्भयता से बढते जा रहे थे। उन्हें एक साथ का भी सुयोग मिल गया, किन्तु, वे उसके साथ अधिक नही जा पाये। मार्ग भूल कर भटक गए। तीन दिन तक अरण्य को रौंदते रहे। चौथे दिन वे एक गाव मे पहुँचे। खाना पकाकर भोजन के लिए चारो ही प्राणी बैठे। उनके शुभ का योग था। एक जिनकल्पी मुनि का भी शुभागमन हो गया। प्रकृति-भद्र राजकुमार ने बढ़ते भावो से मुनिवर को आहार बहराया। अमात्य पुत्र और श्रेष्टि पुत्र ने उस दान का अनुमोदन किया। क्षत्रिय पुत्र ने उस दान से कुछ अपने लिए बचा लेने को कहा। दानान्तराय से भोगान्तराय कर्म का उसके निबन्धन हुआ।

कुछ दिनों बाद राजा का कोप शान्त हुआ। उस ने श्रीसार राजकुमार को बुलाया और राज्य-भार प्रदान किया। बहुत समय तक श्रीसार ने राज्य का सम्यक् प्रकार से निर्वहन किया। वहा से अपना आ-युष्य समाप्त कर दान के प्रभाव से वह रत्नसार हुआ। अमात्य- पुत्र और श्रेष्ठि-पुत्र अशोक मजरी और तिलक मजरी हुई। क्षत्रिय पुत्र शुक हुआ। श्रीसार द्वारा मुक्त वह चोर तापस-व्रत ग्रहण कर चन्द्रचूड नामक देव हुआ। वह प्रतिक्षण रत्नसार के सहयोग मे रहता है।

सिंहल सिंह

सिंहल द्वीप मे सिंहलेश्वर राजा राज्य करता था। रानी का नाम सिंहला और राजकुमार का नाम सिंहल सिंह था। एक दिन राजकुमार उद्यान में क्रीडा के लिए गया। वसन्त ऋतु थी, अत चारो ओर वन-राजि विस्स्वर हो रही थी। राजकुमार सवत्र घूमता हुआ आनन्द लूट रहा था। उसी सहसा एक करुण क्रन्दन सुनाई दिया। एक कन्या सहायता के लिए चिल्ला रही थी। राजकुमार का हृदय करुणा से भर आया। उसके कदम सहसा उस ओर ही बढ चले। उसने देखा, एक कन्या हाथी के चगुल म फँसी हुई है। राजकुमार ने हाथी को ललकारा और कन्या को छोडने के लिए कहा। साथ ही उसने यह भी कहा—"यदि तेरे मे ही पौरुष है, तो मेरी ओर कदम बढा।" राजकुमार की ललकार से हाथी क्रुद्ध हुआ। उसने कन्या को छोड़ दिया और राजकुमार के पीछे दौड पड़ा। राजकुमार ने अपना उत्तरीय उतार कर हाथी के

सामने डाल दिया। हाथी की दृष्टि उत्तरीय मे अटक गई। वह उत्तरीय पर ही दन्त-प्रहार करने लगा। कन्या वहाँ से दौड गई। राजकुमार शीघ्रता से दान्तो पर पैर रखकर हाथी पर चढ गया। अकुश के प्रहार से उसे घायल कर दिया। शिथिल हो जाने पर उसका मद भी उतर आया। राजकुमार ने उसे आलान-स्तम्भ से बाँध दिया। राजा ने जब यह वृत्तान्त सुना, तो उसे विशेष प्रसन्नता हुई। नगर मे उस दिन चारो ओर कुमार की ही चर्चा थी।

कन्या धन श्रेष्ठी की पुत्री थी। उसका नाम धनवती था। राजकुमार के पौरुष से वह बहुत प्रभावित हुई। धन श्रेष्ठी ने अवसर का लाभ उठाया। उसने कन्या का विवाह राजकुमार के साथ कर दिया।

कुछ एक व्यक्ति इतने शालीन होते है, जिनकी ओर सहस्रो आखे निर्निमेष हो जाती है। राजकुमार जब भी क्रीडा के लिए नगर मे जाता, उससे आकृष्ट होकर सहस्रो महिलाए अपने काम को छोड कर उसके पीछे हो जाती थी। शहर के वैश्य वर्ग को यह उचित नही लगा। उन्होने उसके प्रतिकार के लिए राजा से प्रार्थना की। राजा ने उस प्रार्थना को स्वीकार किया और राजकुमार सिहल को

राजपाटिका[1] के लिए सर्वथा निषिद्ध कर दिया। राजकुमार को उससे गहरी ठेस पहुँची। उसका चिन्तन था, मैं अपने रास्ते जाता हूँ और रास्ते आता हूँ। किसी को न कुछ कहता हूँ और न किसी की ओर दृष्टि उठाकर भी देखता हूँ, फिर भी मुझे यह दण्ड क्यों दिया गया ? वह उमना रहने लगा। उसका हृदय फट गया। एक दिन उसने शहर छोड़कर देशान्तर में जाने का निश्चय कर लिया। प्रतिबन्धित जीवन के सुख से तो अन्यत्र घूमना और कष्ट झेलना भी समुचित है। उसने अपने निश्चय से धनवती को सूचित किया। उसने उस निश्चय का अनुमोदन किया और दोनों साथ-साथ चलने को उद्यत हो गये। रात को दोनों ने नगर त्याग कर दिया। समुद्र के तट पर पहुँचे। जहाज पर सवार होकर समुद्र यात्रा पर निकल पड़े। जहाज क्रमशः आगे बढ़ता गया। संयोग की बात थी, जहाज भयंकर झंझा में फंस गया। चालक कुछ देर तक जहाज को बचाता रहा, पर अंततः वह असफल ही

(१) प्राचीन युग में राजा आदि राज नायक प्रायः मध्याह्नोत्तर तीसरे पहर के अन्त में या चतुर्थ प्रहर में नगर के परिवार के साथ राज महलों से प्रस्थान करते थे। प्रधान राज मार्गों से होते हुए नगर के बाहर उद्यान आदि में जाते थे और वहाँ घण्टा घूमकर पुनः राजमहलों में लौट आते थे। यह चर्या 'राजपाटिका' कही जाती है।

रहा । जहाज किसी चट्टान से जा टकराया और टूट गया । सभी यात्री समुद्र मे समा गये । धनवती के हाथ एक फलक लगा । उसके माध्यम से तैरती हुई वह तट पर पहुँची । समीप मे ही कुसुमपुर नगर था । वह वहा आई । उसी नगर मे प्रियमेलक नामक यक्ष का यक्षायतन था । उसके बारे मे यह जनश्रुति थी कि किसी प्रियजन के बिछुड जाने पर यदि वहाँ ध्यान लगाया जाता, तो वह व्यक्ति, उसे वहाँ मिल सकता था । धनवती ने अभिग्रह ग्रहण कर तप का आरम्भ कर दिया । उसका सारा समय मौन मे ही बीतता ।

राजकुमार के हाथ भी एक फलक आ गया । वह भी उसके सहारे तैरता हुआ रत्नपुर के समीपवर्ती तट पर पहुँचा । रत्नपुर मे रत्नप्रभ राजा राज्य करता था । उसकी रानी का नाम रत्नसुन्दरी था । राजकुमारी का नाम रत्नवती था । एक बार रत्नवती को एक सर्प ने काट लिया । बहुत सारे मन्त्रवादियो ने अनेक उपचार किये, परिणाम कुछ भी नही आया । राजा ने नगर मे घोषणा करवाई । राजकुमार सिहल ने उसे स्वीकार किया । वह राजमहलो मे आया । राजा के आदेश से कुमार ने मन्त्र-प्रभाव से उसे स्वस्थ कर दिया । शुभ मुहूर्त पर रत्नवती का विवाह

सिंहलकुमार के साथ कर दिया गया।

जिस दिन समुद्र में जहाज टूटा था, उसी दिन राजकुमार सिंहल ने प्रतिज्ञा की थी, जब तक धनवती मुझे प्राप्त नहीं होगी, तब तक अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा। रत्नवती के साथ विवाह होने पर सिंहल के समक्ष जटिल समस्या उपस्थित हो गई। सात मंजिल के भव्य महल में रत्नवती उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। रमणीय पल्यंक पर सुकोमल शय्या बिछी हुई थी। राजकुमार सिंहल आया और शय्या को छोड़कर भूमि पर ही सो गया। रत्नवती का मानस नाना आशंकाओं से भर गया। वह कुछ क्षण उस पहेली को समझने का प्रयत्न करती रही, पर, सफल नहीं हो पाई। उसने सादरपूर्वक राजकुमार से उसका कारण पूछा। राजकुमार ने वास्तविकता को झुठलाने का प्रयत्न किया। उसे भय था, कहीं यथार्थता को प्रकट किया गया, तो रत्नवती को आघात लगेगा। उसने कहा—"मैं जब भ्रमण के लिए अपने देश से चला था, मैंने एक प्रतिज्ञा की थी—जब तक पितप्रवर के पुन दर्शन नहीं कर पाऊँगा, तब तक ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा।" रत्नवती के मुँह से सहसा ही ये शब्द निकल पड़े—"स्वामिन् ! आप धन्य हैं, कृतपुण्य हैं, जिनके

हृदय मे इस प्रकार की पितृ-भक्ति है ।"

राजा रत्नप्रभ ने राजकुमार से सारा वृत्त पूछा । राजकुमार ने विस्तार के साथ अपनी घटना बतलाई और उसने कहा—"मै अपनी प्रथम पत्नी के अन्वेषण मे जाना चाहता हूं ।" राजा ने उस विचार का अनुमोदन किया और रत्नवती के साथ उसे विदा किया । राजा ने उसके साथ रुद्रदत्त मन्त्री को भी भेजा । दोनो ही जहाज मे सवार होकर समुद्र-यात्रा मे चल पडे ।

रुद्र रत्नवती के लावण्य पर मुग्ध हो गया । वह सोचने लगा, कितना सुन्दर हो, राजकुमार सिंहल को समुद्र मे धकेलकर रत्नवती को हस्तगत किया जाये । वह उस प्रकार के छिद्र-गवेषण मे तत्पर हो गया । एक बार राजकुमार शौच के लिये रात्रि मे मचिका पर बैठा । जहाज के सारे लोग सो चुके थे । रुद्र ने मंजिका की रस्सी को काट डाला । राजकुमार की जल-समाधि हो गई । रुद्र ने बनावटी तौर पर सहायता के लिए चिल्लाना आरम्भ किया । रत्नवती को भी जब यह ज्ञात हुआ, उसे असह्य पीडा हुई । रुद्र ने रत्नवती को सान्त्वना देने के व्याज से अपनी कुत्सित भावना व्यक्त करते हुए कहा—"भद्रे ! तुम विलाप मत करो । इस अभाव की पूर्ति तो मै भी कर सकता हूँ । मेरा जीवन



मान मंजिल के भव्य महल में रत्नावती सिंहल सिंह की प्रतीक्षा कर रही थी।



सात मजिल के भव्य महल मे रत्नावती सिहल सिह की प्रतीक्षा कर रही थी।

हुई वह भी उसी यक्षायतन मे पहुँच गई, जहा धनवती मौन के साथ तप का अनुष्ठान आरम्भ कर दिया।

सयोग की बात थी, मन्त्री रुद्र के हाथ भी एक फलक लगा। वह भी तैरता हुआ तट पर आया और कुसुमपुर के राजा के मन्त्री-पद पर नियुक्त हो गया।

राजकुमार सिंहल जब समुद्र मे गिरा था, किसी अदृश्य शक्ति ने उसे वहाँ से उठाया और एक तापस-आश्रम मे छोड दिया। आश्रम के कुलपति ने जब उसे देखा, अतीव प्रसन्नता हुई। क्योकि उसके शरीर पर उसे कुछ ऐसे चिन्ह दृष्टिगत हो रहे थे, जो उसके माडलिक राजा होने का सकेत प्रस्तुत कर रहे थे। कुलपति के एक युवती कन्या थी, जिसका नाम रूपवती था। तापस उसके भविष्य के बारे मे विशेष चिन्तित था। राजकुमार सिंहल को अपने आश्रम मे देखकर उसने विवाह का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। उसने उसे स्वीकार कर लिया। तापस ने कर-मोचन के अवसर पर राजकुमार को प्रतिदिन सौ मुद्राये प्रदान करने वाली कथा और आकाशगामी खटोला प्रदान किया। राजकुमार रूपवती वहाँ से खटोले मे बैठकर वहाँ से उडा। उसने उसे आदेश दिया था कि जहाँ धनवती हो, वही हमको ले चल। खटोला कुसुमपुर

कूबड़े राजकुमार ने रूपवती को लाकर शीतल पानी दिया। रूपवती कूबड़े को देख सिहर उठी। उसने सोचा, यह मेरा पति नही है। कोई अन्य है और मुझे छलने के लिए आया है। उसने उसकी ओर दृष्टि घुमाकर भी नही देखा। वह वहाँ से उठी और चारों ओर पति की खोज करने लगी। जब वह उसमें सफल नही हो पाई, तो दु खित होकर उसी प्रियमेलक यक्ष के तीर्थ पर आकर मौन के साथ तप का अनुष्ठान करने लगी।

नगर में सर्वत्र एक ही चर्चा होने लगी, प्रियमेलक यक्ष के तीर्थ पर तीन स्त्रियां मौन बैठी हुई तपस्या कर रही हैं। वे किसी से भी नही बोलती हैं। नागरिकों ने राजा से स्थिति निवेदित की। राजा वहाँ आया और उनसे अनेक प्रश्न पूछे, पर, मौन के कारण रहस्य आवृत्त ही रहा। वे तीनों स्त्रिया राजा व अन्य किसी की ओर दृष्टि उठाकर भी नही देखती थी। राजा घबराया। उसने घोषणा करवाई—जिस व्यक्ति के प्रयत्न से ये तीनो बोल पड़े तो, उसके साथ में अपनी कन्या कुसुमवती का विवाह करूगा। किसी भी व्यक्ति ने इस घोषणा का स्पर्श नही किया। कुब्ज ने उसका स्पर्श किया। उसने एक बडी पुस्तक तैयार की।

कूबडे राजकुमार ने रूपवती को लाकर शीतल पानी दिया। रूपवती कूबडे को देख सिहर उठी। उसने सोचा, यह मेरा पति नही है। कोई अन्य है और मुझे छलने के लिए आया है। उसने उसकी ओर दृष्टि घुमाकर भी नही देखा। वह वहाँ से उठी और चारों ओर पति की खोज करने लगी। जब वह उसमें सफल नही हो पाई, तो दु खित होकर उसी प्रियमेलक यक्ष के तीर्थ पर आकर मौन के साथ तप का अनुष्ठान करने लगी।

नगर में सर्वत्र एक ही चर्चा होने लगी, प्रियमेलक यक्ष के तीर्थ पर तीन स्त्रिया मौन बैठी हुई तपस्या कर रही हैं। वे किसी से भी नही बोलती हैं। नागरिकों ने राजा से स्थिति निवेदित की। राजा वहाँ आया और उनसे अनेक प्रश्न पूछे, पर, मौन के कारण रहस्य आवृत्त ही रहा। वे तीनों स्त्रिया राजा व अन्य किसी की ओर दृष्टि उठाकर भी नही देखती थी। राजा घबराया। उसने घोषणा करवाई—जिस व्यक्ति के प्रयत्न से ये तीनो बोल पडे तो, उसके साथ मे अपनी कन्या कुसुमवती का विवाह करूगा। किसी भी व्यक्ति ने इस घोषणा का स्पर्श नही किया। कुब्ज ने उसका स्पर्श किया। उसने एक बडी पुस्तक तैयार की।

उसके पन्ने कोरे थे। पवित्र वस्त्र मे उस पुस्तक को बांधा और बगल मे डालकर वह राजा के पास आया। उसने कहा—"राजन् ! इस पुस्तक की विशेषता है कि जो व्यक्ति दो से पैदा हुआ है, उसे इसके अक्षर दिखाई नही पड़ेगे। इस पुस्तक मे ससार के भूत, भविष्य व वर्तमान, तीनो कालो का सम्यक् विवेचन किया गया है। इसमे प्रत्येक घटना का सविस्तार उल्लेख है। यदि इसे तीनो को सुनाया जाये तो तीनो ही बोल पडेगी।" राजा ने व अन्य व्यक्तियो ने उस पुस्तक को हाथ मे लिया और कहा—"इसमे तो बहुत सुन्दर लिखा हुआ है।" राजा ने कूबडे से कहा—"तुम इसे पढो और इन तीनो के विगत व अनागत पर प्रकाश डालो।"

कूबड़े ने पुस्तक मे अपनी आँखे गड़ाई, कुछ पन्ने उलटे और पढ़ना आरम्भ किया—"सिहल द्वीप के राजकुमार सिहल ने अपनी पत्नी धनवती के साथ समुद्र-यात्रा प्रारम्भ की। बीच ही मे जहाज टूट गया।" कुबडा सुनाता हुआ रुक गया और अगला प्रकरण फिर सुनाऊगा, कहकर मौन हो गया। अपने से सम्बन्धित घटना को सुनकर धनवती का मौन टूट गया और वह बोल पड़ी—"भद्र ! आगे को घटना पर

भी तो प्रकाश डालें। तुम तो करुणाशील हो ?"

धनवती का बोल पडना सभी के लिए आश्चर्य-कारक था। राजा को भी आश्चर्य हुआ। उसने भी कूवडे से आगामी घटना को स्पष्ट करने का अनुरोध किया। कूवडे ने उसे स्वीकार किया और पढने लगा—"कुमार के हाथ फलक लगा, अत वह समुद्र को तैर कर रत्नपुर पहुँचा वहाँ उसने रत्नवती के साथ विवाह किया। पुन समुद्र-यात्रा पर निकला। रुद्रदत्त मन्त्री भी उसके साथ था। रुद्रदत्त के अभिप्राय दूषित हो गये। रत्नवती को पाने के लिए उसने राजकुमार को समुद्र मे धकेल दिया।"

कूवडे ने पुस्तक को समेटना आरम्भ कर दिया। सहसा रत्नवती बोल उठी—"आगे का भी तो वताओ ? मैं उसे ही विशेषत सुनना चाहती हूँ।"

रत्नवती का ज्यो ही मौन टूटा, राजा को विशेष आश्चय हुआ। उसने कूवडे से और भी आगे सुनाने की पुन प्रार्थना की। कूवडे ने कहा—"राजकुमार ज्यो ही समुद्र मे गिरा, किसी अदृश्य शक्ति ने उसे बचा लिया और एक तापस के आश्रम मे छोड दिया। वहाँ उसका तापस-कन्या रूपवती के साथ विवाह हुआ। तापसपति ने उसे एक कन्था और एक खटोला प्रदान

किया। उन सब वस्तुओं और रूपवती को लेकर वह इसी कुसुमपुर नगर के उद्यान में आया। रूपवती को प्यास लगी। राजकुमार पानी लाने के लिए किसी कुएँ पर गया। वहाँ उसे सर्प ने काट डाला।''

कूबडे ने एक लम्बा निःश्वास छोड़ा और मौन हो गया। रूपवती ने कहा—''भद्र पुरुष! इस समय तुम्हारा रुक जाना, बहुत ही दुःखद है। तुम बताओ, आगे क्या हुआ? मेरे लिए वही विशेष आकर्षण है।''

कूबडे ने पुस्तक को समेटकर बगल में डाला और मुस्कान के साथ राजा की ओर देखा। राजा वचनबद्ध था, अतः उसने अपनी कन्या का विवाह कूबड़े के साथ कर दिया।

राजकुमारी और कूबड़े का विवाह अनमेल था; अतः वह सबको ही अखरा। राजा के पारिवारिक भी सम्मिलित नहीं हुए। गीत भी उन तीन महिलाओं ने ही गाये। कर-मोचन के अवसर पर कूबड़े ने शाले से कुछ वस्तुएँ माँगी। शाले की भौंहें तन गईं। वह एक सर्प ले आया और उसके हाथ पर डाल दिया। सर्प ने कूबडे को काट खाया। कूबड़ा मूर्छित होकर गिर पड़ा। तीनों महिलाओं ने जब उसकी यह स्थिति देखी, बहुत दुःखित हुईं। उनका एक ही चिन्तन था,

यदि वह पुरुष काल-कवलित हो गया तो पति की खोज कौन करेगा ? उन्होंने कटारी अपने हाथों में ले ली और अपने-अपने पेट में घोंपने के लिए सभी ने एक साथ हाथ उठाया। तीनों के ही भाग्य ने पलटा खाया। कुबड़ा तत्काल खड़ा हो गया। उसकी कूब भी जाती रही। एक दिव्य कुमार के रूप में वह प्रस्तुत हो गया। चारों ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

रस में और विशेष रस की निष्पत्ति हो जाती है, जब अतीत और अनागत का अनालोचित चित्र प्रस्तुत हो जाता है। उसी समय एक देव प्रकट हुआ। उसने कुमार के पूर्व भव-जीवन के प्रसंग प्रस्तुत करते हुए कहा—"धनपुर में धनंजय श्रेष्ठी रहता था। उसकी पत्नी का नाम धनजया था। धनदेव और धनमित्र दो पुत्र थे। धनदेव को एक बार पात्र-दान का अवसर प्राप्त हुआ। ग्रीष्म की ऋतु थी। मिष्टान्न मिश्रित दूध साधुओं को बहराया। धनदेव उस पुण्य के प्रभाव से महर्द्धिक देव हुआ। वह देव मैं ही हूं।

अनुज धनमित्र ने भी उसी अवसर पर साधुओं को इक्षुरस बहराया। वह ऐसा चाहता नहीं था। वह वहीं से आयु शेष कर सिंहलसिंह हुआ। दान के प्रभाव से उसे चार पत्नियां मिली। भावों में अखण्डता नहीं

थी । अत पत्नियों का विरह सहन करना पड़ा । जब सिहल समुद्र में गिरा था, तब मैने ही उसे वहाँ से उबारा था और तापस-आश्रम में रखा था । शत्रुओ से रक्षा करनेके निमित्त मैंने ही इसेकू बड़ा बनाया था ।" देव अन्तर्धान हो गया । सिहलकुमार को जाति-स्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ ।

राजा ने क्रुद्ध होकर रुद्रदत्त मन्त्री को देश से निर्वासित कर दिया । सिहल राजकुमार चारो पत्नियों को साथ लेकर खटोले पर बैठा और सिहलद्वीप पहुँचा । राजा सिहलेश्वर ने सिहल को राज्य-भार सौंप दिया । सिंहल ने कन्था के बल पर जनता की दरिद्रता दूर की, जैन धर्म को समाराधना की और अनशनपूर्वक देह-त्याग किया । छठे स्वर्ग मे देव रूप मे उत्पन्न हुआ ।